[1991] 4 उम० नि० प० 801

कावेरी जल विवाद अधिकरण वाला मामला

22 नवंबर, 1991

मु० न्या० रंगनाथ मिश्र, न्या० के० एन० सिंह, ए० एम० अहमदी, कुलदीप सिंह और पी० बी० सावंत

संविधान, 1950 अनुच्छेद 245, 246, 248, 262 तथा सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 56 और सूची II की प्रविष्टि 17—कर्नाटक कावेरी द्रोणी सिंचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991 (अब 1991 का अधिनियम सं० 27) की विधिमान्यता—संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य घोषित ।

अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956—उक्त अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन अधिनियमित किया गया है, न कि सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 56 के अधीन । अनुच्छेद 262 और सूची I की प्रविष्टि 56 तथा सूची II की प्रविष्टि 17 के बीच अंतर है ।

अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956, धारा 5(2)—अधिकरण का अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने वाला आदेश धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय है और उसका धारा 6 के अधीन राजपत्र में प्रकाशित किया जाना आवश्यक है ।

संविधान, 1950, अनुच्छेद 131 और 262, सहपठित नदी बोर्ड अधिनियम, 1956, धारा 11—न्यायालय द्वारा अन्तरराज्यिक जल विवाद का आरम्भिक संज्ञान या अधिकारिता अपवर्जित है ।

संविधान, 1950, अनुच्छेद 131—न्यायालय की आरम्भिक अधिकारिता—अंतरराज्यिक नदी या नदी घाटियों के जल से सम्बन्धित विवाद, अनुच्छेद 262 के साथ पठित, अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 11—द्वारा न्यायालय की परिधि से अपवर्जित है ।

संविधान, 1950, अनुच्छेद 143(1) सहपठित उच्चतम न्यायालय नियमावली, 1966, आदेश 40, नियम 1—परामर्श-अधिकारिता—यह अपीली अधिकारिता नहीं है—अनुच्छेद 143 के अधीन, न्यायालय अपने पूर्वतर विनिश्चयों का पुनर्विलोकन नहीं कर सकता है—राष्ट्रपति विधि का प्रश्न निर्देशित कर सकते हैं, जिसका न्यायालय द्वारा विनिश्चय नहीं किया गया है ।

संविधान, 1950, अनुच्छेद 143—राष्ट्रपति के निर्देश पर परामर्श के रूप में राय—क्या वह सभी न्यायालयों के लिए आबद्धकर है—अनभिलिखित राय निर्देश का भाग नहीं होती है—तथापि परामर्श की राय को सम्यक् महत्त्व और सम्मान दिया जाता है और सामान्यतया उसका अनुसरण किया जाता है ।

संविधान, 1950, सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 56 और 96 तथा सूची II की प्रविष्टि 14, 17 और 18, सहपठित कर्नाटक कावेरी द्रोणी सिंचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991 (अब 1991 का अधिनियम सं० 27)—अंतरराज्यिक नदी जल—संसदीय विधान द्वारा राज्य विधान मण्डल को सक्षमता से केवल उस सीमा तक वंचित किया गया है, जिस तक संसदीय विधान प्रभावी है, बशर्ते कि संसदीय विधान उसे लोक हित में घोषित करे।

पद्धति और प्रक्रिया

राज्य विधान—विधान मण्डल सामान्यतः न्यायालय द्वारा घोषित विधि में परिवर्तन कर सकता है किंतु वह पक्षकारों के बीच एक विशेष विनिश्चय को अपास्त नहीं कर सकता है और वह केवल उनके अधिकारों और दायित्वों को प्रभावित नहीं कर सकता है।

कावेरी नदी अन्तरराज्यिक नदी है और वह दक्षिणी प्रायद्वीप की बड़ी नदियों में से एक है। उक्त नदी और उसकी सहायक नदियों का द्रोणी-क्षेत्र दोनों राज्यों, अर्थात् कर्नाटक और तमिलनाडु के राज्य-क्षेत्रों में काफी फैला हुआ है; कर्नाटक ऊपरी तटवर्ती राज्य है और तमिलनाडु निचला तटवर्ती राज्य है। अन्य क्षेत्र, जो इस नदी जल के हिताधिकारी हैं, केरल राज्य और पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र में समाविष्ट राज्य क्षेत्र हैं। अपने शीर्ष से बंगाल की खाड़ी में गिरने तक, नदी की कुल लंबाई 802 किलो मीटर है। यह नदी, कर्नाटक और तमिलनाडु की सीमा में पहुंचने से पूर्व दक्षिण-पूर्वी दिशा में लगभग 381 किलो मीटर लम्बा मार्ग तय करती है। वह लगभग 64 किलो मीटर (की लम्बाई) तक उक्त दोनों राज्यों के बीच सीमा भी गठित करती है और उसके पश्चात् समुद्र में मिलने से पूर्व तमिलनाडु में लगभग 357 किलो मीटर की यात्रा पूरी करती है। उन क्षेत्रों के बीच, जो इस समय मुख्यतः कर्नाटक और तमिलनाडु राज्य में समाविष्ट हैं और जो करारों के समय एक ओर तत्कालीन मद्रास प्रेसीडेंसी और दूसरी ओर मैसूर राज्य में समाविष्ट थे, नदी जल को बांटने के लिए 1892 और 1924 में दो करार किए गए। अंतिम करार वर्ष 1974 में समाप्त हो गया। इस समय नदी की परिधि में कर्नाटक तमिलनाडु और केरल के तीन राज्य और पाण्डिचेरी संघ राज्य क्षेत्र आते हैं। वर्तमान तमिलनाडु राज्य का कावेनी नदी द्रोणी का लगभग 43,868 वर्ग किलो मीटर का क्षेत्र है, और यह द्रोणी-क्षेत्र अब कम हो गया है, जो करार के समय लगभग 49.136 वर्ग किलो मीटर था। इसके विपरीत, उक्त नदी का द्रोणी-क्षेत्र, जो मैसूर राज्य में लगभग 28,887 वर्ग किलो मीटर था, वर्तमान कर्नाटक राज्य में बढ़कर लगभग 34,273 वर्ग किलो मीटर हो गया है। कर्नाटक राज्य के अनुसार, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल द्वारा कावेरी नदी के प्रवाहों को किए गए योगदान क्रमशः 425 टी०एम०सी०, 252 टी०एम०सी० और 113 टी०एम०सी० हैं, कुल मिलाकर जिनका योग 790 टी०एम०सी० बनता है। तमिलनाडु राज्य के अनुसार, उक्त तीनों राज्यों के योगदान क्रमशः 392 टी०एम०सी०, 222 टी०एम०सी और 126 टी० एम०सी० हैं, कुल मिलाकर जिनका योग 740 टी०एम०सी० बनता है। वर्ष 1974 में केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अध्ययन-दल ने संबंधित राज्यों के विनियोग निकाले, जो इस प्रकार हैं—कर्नाटक—177 टी०एम०सी० तमिल नाडु, जिनमें पाण्डिचेरी सम्मिलित है,—

489 टी० एम० सी० और केरल—5 टी० एम० सी० । वर्ष 1956 में संसद् ने अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास के प्रयोजन के लिए नदी बोर्ड अधिनियमि: 1956 तथा पूर्वोक्त जलों के उपयोग, वितरण और नियंत्रण से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 अधिनियमित किया । वर्ष 1970 में तमिलनाडु ने अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 3 के उपबंधों का अवलंब लिया और केंद्रीय सरकार से दोनों राज्यों, अर्थात् तमिलनाडु और कर्नाटक के बीच विवाद का अधिनियम के अधीन एक अधिकरण को निर्देश किए जाने के लिए अनुरोध किया। केंद्रीय सरकार ने उक्त दोनों राज्यों के बीच बातचीत आरंभ की । इसके साथ ही, तमिलनाडु राज्य ने, एक अधिकरण गठित करने और उसे विवाद निर्देशित करने के लिए संघ सरकार को निदेश की ईप्सा करते हुए, संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन एक वाद के माध्यम से इस न्यायालय में समावेदन किया। उक्त वाद में तमिलनाडु ने कर्नाटक राज्य को उसमें वर्णित परियोजनाओं के संबंध में आगे कार्रवाई करने और उनका निष्पादन करने से अवरुद्ध करने के लिए अंतरिम आदेश हेतु आवेदन किया। इस न्यायालय ने अंतरिम अनुतोष हेतु आवेदन खारिज कर दिया। इस बीच दोनों राज्यों के बीच चल रही बात-चीत के परिणामस्वरूप एक तथ्यान्वेषी समिति गठित की गई, जो अन्य बातों के साथ-साथ, नदी द्रोणी के अंतर्गत संबंधित राज्यों में क्षेत्रों की प्रकृति जल संसाधनों की उपलभ्यता और उपयोग की सीमा और उनकी अपेक्षाओं के संबंध में तथ्य अभिनिश्चित करने के लिए गठित की गई । समिति के गठन को देखते हुए, तमिलनाडु ने अपना वाद वापस ले लिया। तथ्यान्वेषी समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कीं। भारत सरकार के सिंचाई मंत्रालय में तत्कालीन अपर सचिव की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय अध्ययन दल भी कावेरी द्रोणी में तीनों राज्यों की विद्यमान और योजनाबद्ध परियोजनाओं में जल की बचत को निर्धारित करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए गठित किया गया। कावेरी द्रोणी के अन्दर संकर्मों को सशक्त बनाने, चैनलों की लाइनिंग, जलाशयों के एकीकृत प्रचालनों, प्रभावित क्षेत्र में जल अपेक्षा के वैज्ञानिक निर्धारण सहित, सिंचाई पद्धति के सुधार और आधुनिकीकरण पर, तथा वर्षा और प्रभाव, तथा अपेक्षा और निर्मोचन (जल छोड़े जाने) के बीच दक्षतापूर्ण संतुलन बनाए रखने के लिए, जलाशयों से निर्मोचनों के मानीटरन के लिए अध्ययन दल की सिफारिशें अन्तरराज्यिक सम्मेलन में घोषित की गईं। आगे बातचीत के परिणामस्वरूप" 1976 वाला समझौता" किया गया। इस समझौते में तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल राज्यों में क्रमश: 30 : 53 : 17 के अनुपात में अधिशेष जल का प्रभाजन परिकल्पित किया गया। बचत के मामले में, अध्ययन दल ने कर्नाटक को 87 टी०एम० सी०, तमिलनाडु को 4 टी०एम०सी० और केरल को 34 टी०एम०सी० के अनुपात में प्रभाजन की प्रस्थापना की। तथ्यान्वेषी समिति और संघ सरकार द्वारा गठित अध्ययन-दल के माध्यम से एकत्र जानकारी के बावजूद, बातचीत सफल नहीं रही। तत्पश्चात् तमिलनाडु रैयत संगम ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष एक याचिका उपस्थापित की उक्त याचिका में, उससे अधिनियम के अधीन विवाद अधिकरण को निर्देशित करने की अपेक्षा करते हुए, केन्द्रीय सरकार को परमादेश रिट जारी किए जाने की ईप्सा की गई। याचिका के साथ एक आवेदन भी संलग्न किया गया, जिसमें रम अनुतोष की ईप्सा की गई। तमिलनाडु राज्य ने रिट याचिका का समर्थन किया।

संघ सरकार और कर्नाटक राज्य सहित, प्रत्यर्थियों को सूचनायें जारी की गई। लगभग 7 वर्ष तक याचिका इस न्यायालय में लंम्बित रही। इस अवधि के दौरान अंतरिम अनुतोष के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया। यद्यपि इस अवधि के दौरान अन्तरराज्यिक बैठकें की जाती रहीं, तथापि कोई, सार्थक बात सामने नहीं आई। अतः, तमिलनाडु राज्य ने अधिनियम की धारा 3 के अधीन अधिकरण के गठन के लिए और उसे न्यायनिर्णयन हेतु जल विवाद के निर्देश के लिए केन्द्रीय सरकार के समक्ष अनुरोध पत्र प्रस्तुत किया। उक्त पत्र में तमिलनाडु ने मुख्यतः कर्नाटक क्षेत्र में संकर्मों के सन्निर्माण और प्रतिस्रोत जल के प्रभाजन के विरुद्ध शिकायत की, जिससे तमिलनाडु राज्य में अनुस्रोत जल की बाबत उसके हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। उसमें 1892 और 1924 के करारों के कार्यान्वियन की भी ईप्सा की गई, जो 1974 में समाप्त हो गए थे। तमिलनाडु रैयत संगम द्वारा फाइल की गई रिट याचिका की सुनवाई के दौरान, केन्द्रीय सरकार ने मामला न्यायालय पर छोड़ दिया। इस न्यायालय ने वार्ता के अनुक्रम और समन की उस अवधि को ध्यान में रखते हुए, जो व्यतीत हो गई थी, यह अभिनिर्धारित किया कि दोनों राज्यों के बीच वार्ता असफल हो गई थी, और संघ सरकार को अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिकरण गठित करने के लिए निदेश किया। इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसरण में, संघ सरकार ने कावेरी जल विवाद अधिकरण गठित किया और उसे तारीख 6 जुलाई, 1986 के तमिलनाडु के अनुरोध पत्र से उत्पन्न होने वाला विवाद निर्देशित किया। कावेरी जल विवाद अधिकरण ने तारीख 20 जुलाई, 1990 को अपनी प्रथम बैठक की। उस दिन तमिलनाडु ने अंतरिम अनुतोषों की ईप्सा करते हुए, अधिकरण के समक्ष एक पत्र प्रस्तुत किया। अधिकरण ने तमिलनाडु को समुचित आवेदन प्रस्तुत करने का निदेश किया। तदुपरि तमिलनाडु और पाण्डिचेरी संघ राज्य क्षेत्र ने अंतरिम अनुतोषों के लिए दो पृथक आवेदन प्रस्तुत किए। तमिलनाडु द्वारा दावाकृत अंतरित अनुतोष यह था कि कर्नाटक को तारीख 31 मई, 1972 को उनके द्वारा यथापरिबद्ध या यथाप्रयुक्त सीमा से परे कावेरी नदी जल को परिबद्ध न करने या उसका उपयोग न करने का निदेश किया जाए, जैसी कि द्रोणी राज्यों के मुख्य मंत्रियों और संघ के सिंचाई और विद्युत मंत्री के बीच सहमति हुई थी। उसमें कर्नाटक को कावेरी द्रोणी में कोई नई परियोजनाएं, बांध, जलाशय, नहरें आरंभ करने और/या परियोजनाओं, बांधों जलाशयों और नहरों आदि के सन्निर्माण के संबंध में आगे कार्यवाही करने से अवरुद्ध करते हुए, आदेश पारित किए जाने की भी ईप्सा की गई। अन्तरिम अनुतोष हेतु अपने आवेदन में पाण्डिचेरी ने अधिकरण की ओर से कर्नाटक और तमिलनाडु राज्य, दोनों, को सितंबर से मार्च तक के मासों के दौरान, उतना जल, जिसके बारे में पहले ही सहमति हो गई थी, अर्थात् 9.3555 टी०एम०सी० जल, छोड़ने के लिए निदेश की ईप्सा की। अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह अन्तरिम अनुतोषों के मंजूर किए जाने के लिए उक्त आवेदन विचारार्थ ग्रहण नहीं कर सकता था, क्योंकि वे विधि की दृष्टि में चलने योग्य नहीं थे, और उसने उक्त आवेदन खारिज कर दिए। इससे व्यथित होकर, तमिलनाडु राज्य ने अन्तरिम आदेश हेतु मूल आवेदन में पारित आदेशों के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत याचिकाओं के माध्यम से इस न्यायालय का अवलंब लिया। इसी प्रकार पाण्डिचेरी संघ राज्य क्षेत्र ने भी अन्तरिम अनुतोष हेतु उसके आवेदन में अधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध समावेदन फाइल किया। इन

विशेष अनुमति (इजाजत) याचिकाओं की, जो वाद में क्रमश: 1991 की सिविल अपील सं० 303-04 और 1991 की सिविल अपील सं० 2036 के रूप में संपरिवर्तित कर दी गई, एक साथ सुनवाई की गई और उनका इस न्यायालय ने तारीख 26 अप्रैल, 1991 के अपने निर्णय द्वारा निपटारा कर दिया। अधिकरण ने कर्नाटक राज्य को अपने जलाशयों से कर्नाटक में जल छोड़ने का निदेश किया, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि जून से मई वाले वर्ष में तमिलनाडु के मेत्तूर जलाशय में 205 टी०एम०सी० जल उपलब्ध रहता है। अधिकरण ने कर्नाटक को आदेश में वर्णित रीति में प्रति वर्ष जल के छोड़े जाने को विनियमित करने का निदेश किया। जल का मासिक कोटा प्रति सप्ताह 4 किस्तों में छोड़ा जाना था और यदि किसी सप्ताह में पर्याप्त जल उपलब्ध नहीं था, तो पश्चात्वर्ती सप्ताह में कमी को पूरा किए जाने का निदेश किया गया। अधिकरण ने तमिलनाडु को नियमित रीति में उसके पाण्डिचेरी को कराईकल क्षेत्र के लिए 6 टी०एम०सी० जल परिदत्त करने का भी निदेश किया। इसके अतिरिक्त, अधिकरण ने कर्नाटक को विष्मान 11.2 लाख एकड़ से अधिक, कावेरी जल द्वारा सिंचाई के अधीन अपने क्षेत्र को न बढ़ाने का भी निदेश किया। तत्पश्चात् अधिकरण ने यह कहा कि उसका उक्त आदेश, उसे निर्देशित विवाद के अन्तिम न्यायनिर्णयन तक प्रभावी रहेगा। तत्पश्चात् कर्नाटक के राज्यपाल ने कर्नाटक कावेरी द्रोणी सिंचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991 नामक अध्यादेश जारी किया। इस अध्यादेश के प्रख्यापित किए जाने के तुरन्त पश्चात् कर्नाटक राज्य ने इस घोषणा के लिए तमिलनाडु राज्य और अन्यों के विरुद्ध अनुच्छेद 131 के अधीन एक वाद संस्थित किया कि अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने वाला अधिकरण का आदेश अधिकारितारहित था और इसलिए अकृत और शून्य आदि था। एक अन्य घटना, जिसकी अवेक्षा करना उचित होगा, यह है कि अब उक्त अध्यादेश का स्थान 1991 के अधिनियम सं० 27 द्वारा ले लिया गया है। अधिनियम के उपबंध अध्यादेश के उपबंधों के शब्दश: उद्धरण हैं, सिवाय इसके कि अधिनियम की धारा 4 में "कोई न्यायालय या" शब्दों का लोप कर दिया गया है और अध्यादेश का निरसन करते हुए, धारा 7 जोड़ दी गई है। उपर्युक्त शब्दों के लोप द्वारा इस न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के आदेश को उक्त उपबंध के अध्यारोही प्रभाव से अपवर्जित कर दिया गया है। इसके पश्चात् अध्यादेश के प्रति निर्देश भी सम्मिलित होगा, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो। इन्हीं घटनाओं के संदर्भ में राष्ट्रपति ने उच्चतम न्यायालय को वर्तमान निर्देश किया है। निर्देश का उत्तर देते हुए,

अभिनिर्धारित—संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 56 और सूची II की प्रविष्टि 17 की परीक्षा से यह दर्शित होता है कि राज्य को, कतिपय सीमाओं, अर्थात् अन्तरराज्यिक नदी जलों के विनियमन और विकास पर नियंत्रण के अधीन रहते हुए, अन्तरराज्यिक नदियों से बहने वाले जल सहित, जल के सभी पहलुओं की बाबत विधान बनाने की सक्षमता प्राप्त है, अर्थात् अन्तरराज्यिक नदी जलों के विनियमन और विकास पर नियंत्रण संघ द्वारा अपने हाथ में नहीं लिया जाना चाहिए था और दूसरे, राज्य अपने राज्यक्षेत्र से परे जल के किसी पहलू की बाबत या उसे प्रभावित करने वाला कोई विधान पारित नहीं कर सकता है। तथापि, अन्तरराज्यिक नदी-जलों की बाबत राज्य विधानमंडल को केवल इस सीमा तक संसदीय विधान द्वारा सक्षमता से वंचित किया गया है, जिस तक पश्चात्कथित विधान प्रभावी है, उससे अधिक नहीं, और केवल उसी स्थिति में, यदि प्रश्नगत संसदीय

1991(11) eILR(PAT) SC 16

विधान में यह घोषित किया गया हो कि अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का नियंत्रण लोक हित में समीचीन है, अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में, यदि ऐसा विधान बनाया जाता है, जो उक्त घोषणा करने में असफल रहता है, तो उससे प्रविष्टि 17 के अधीन अन्तरराज्यिक नदी जल की बाबत विधान बनाने की राज्य की शक्तियां प्रभावित नहीं होंगी। (पैरा 52)

सूची 2 की प्रविष्टि 14, अन्य बातों के साथ, कृषि के संबंध में है। जहां तक कृषि नदी-जल सहित, जल पर निर्भर करती है, राज्य विधानमंडल कृषि के संबंध में विधान अधिनियमित करते समय, जल प्रदायों, सिंचाई और नहरों, जल निकास और तटबंध, जल भंडारकरण और जल शक्ति सहित, अपने जल-संसाधनों के विनियमन और विकास हेतु उपबंध करने के लिए सक्षम है, जो प्रविष्टि 17 में वर्णित विषय हैं। तथापि, प्रविष्टि 14 के अधीन अधिनियमित ऐसा विधान, जहां तक उसका संबंध अन्तरराज्यिक नदी जल और उसके विभिन्न उपयोगों और उसका उपयोग करने की रीतियों से है, प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन होगा। इसी प्रकार सूची 2 की प्रविष्टि 18 भी है, जिसमें अन्य बातों के साथ, भूमि सुधार का उल्लेख किया गया है, जिसके द्वारा राज्य विधानमंडल को प्रविष्टि 14 और 17 के अधीन जैसा विधान, उन्हीं निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए, अधिनियमित करने की शक्तियां दी जा सकती हैं। संघ सूची की प्रविष्टि 97 अवशिष्टीय है और उसके अधीन संघ को अन्तरराज्यिक नदी जल से संबंधित किसी विषय की बाबत, जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में प्रगणित है, विधान बनाने की शक्ति प्राप्त है। तदनुसार, राज्य विधानमंडल उक्त पहलुओं या विषयों के संबंध में विधान नहीं बना सकता। (पैरा 53 और 54)

उच्चतम न्यायालय को, अन्य बातों के साथ-साथ, दो या अधिक राज्यों के बीच किसी विवाद में आरंभिक अधिकारिता प्राप्त है, जहां विवाद में ऐसा कोई प्रश्न, चाहे वह विधि का हो या तथ्य का, अन्तर्वलित है, जिस पर विधिक अधिकार का अस्तित्व और विस्तार निर्भर करता है, सिवाय ऐसे मामलों के, जो परंतुक द्वारा उक्त अधिकारिता से विनिर्दिष्ट रूप से अपवर्जित कर दिए गए हैं। तथापि, संसद् को विधि द्वारा यह उपबंध करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 262 द्वारा भी शक्ति प्रदत्त की गई है कि उच्चतम न्यायालय या कोई अन्य न्यायालय किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटी के या उसमें जल के उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत किसी विवाद या परिवाद की बाबत अधिकारिता का प्रयोग नहीं करेगा। अधिनियम, अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 11 में न्यायालयों की अधिकारिता के ऐसे अपवर्जन का स्पष्ट रूप से उपबंध किया गया है। उक्त धारा इस प्रकार है—"धारा 11—किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उच्चतम न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को किसी जल विवाद की बाबत, जो इस अधिनियम के अधीन अधिकरण को निर्देशित किया जाए, अधिकारिता प्राप्त नहीं होगी या वह उसका प्रयोग नहीं करेगा।" इस प्रकार अनुच्छेद 262 के साथ पठित, अधिनियम के इस उपबंध द्वारा अन्तरराज्यिक जल-विवाद का, जो अधिनियम के अधीन स्थापित अधिकरण को निर्देशित किया जाए, आरंभिक संज्ञान या अधिकारिता अनुच्छेद 131 के अधीन उच्चतम न्यायालय सहित, किसी न्यायालय की परिधि से अपवर्जित की गई है। (पैरा 57)

अधिकरण के तारीख 25 जून, 1991 के आदेश पर विचार करते समय और कर्नाटक राज्य द्वारा लिए गए इस आधार के संदर्भ में कि अधिकरण को कोई अंतरिम आदेश

पारित करने या कोई अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने की कोई शक्ति या अधिकारिता प्राप्त नहीं है, यह बताना उचित होगा कि वह अधिकरण के उक्त विनिश्चय और उसके कार्यान्वयन को निष्प्रभाव करने के लिए है। इस प्रकार अध्यादेश का संसद् की विधि के अधीन नियुक्त अधिकरण के किसी भी अंतरिम आदेश को उपेक्षित और अकृत करने का प्रभाव है। कर्नाटक राज्य की ओर से न्यायालय के समक्ष इस स्थिति के बारे में कोई विवाद नहीं उठाया गया है। अध्यादेश का अन्य प्रभाव अनन्यतः कर्नाटक राज्य को कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के इतने जल का, जितना वह आवश्यक समझे और ऐसी रीति में और ऐसे अंतरालों पर, जिन्हें वह ठीक और उचित समझे, यद्यपि अधिकरण द्वारा अंतिम न्यायनिर्णयन के लंबित रहते, विनियोग आरक्षित रखना है। (पैरा 61)

इस बाबत कोई विवाद नहीं उठाया जा सकता है कि अधिनियम, अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 प्रविष्टि 56 के अधीन विधान नहीं है। प्रथमतः प्रविष्टि 56 में अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का उल्लेख किया गया है और वह विवाद और उनके सम्बन्ध में तटवर्ती राज्यों के बीच विवादों और उनके न्यायनिर्णयन के संबंध में नहीं है। दूसरे, यदि यह मान भी लिया जाता है कि 'विनियमन और विकास" पद की परिधि के अंतर्गत उनसे उद्‌भूत होने वाले विवादों का समाधान और उनका न्यायनिर्णयन करने हेतु उपबंध भी आता है, तब भी उक्त अधिनियम में प्रविष्टि 56 द्वारा अपेक्षित घोषणा नहीं की गई है। स्पष्टतः यह संयोगवश लोप नहीं है बल्कि प्रविष्टि की जानबूझ कर उपेक्षा है क्योंकि वह विधान की विषयवस्तु को लागू नहीं होती है। तीसरे; तीनों सूचियों में से किसी भी सूची की किसी भी प्रविष्टि में अन्तरराज्यिक नदी जलों के संबंध में विवादों के न्यायनिर्णयन के प्रति विनिर्दिष्ट रूप से निर्देश नहीं किया गया है। (पैरा 62)

इस बात का कि अन्तरराज्यिक नदी जलों से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन के विषय का 7वीं अनुसूची की किसी भी प्रविष्टि में उल्लेख क्यों नहीं किया गया है, कारण खोजना कठिन नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 262 में ऐसे न्यायनिर्णयन का विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया गया है। (पैरा 63)

अनुच्छेद 262 के विश्लेषण से यह दर्शित होता है कि संसद् को ऐसे विवादों के न्यायनिर्णयन का उपबंध करने वाली विधि अधिनियमित करने के लिए अनन्य शक्ति प्रदान की गई है। ऐसे विवाद या परिवाद, जिनके लिए न्यायनिर्णयन का उपबंध किया जा सकेगा, किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटियों के या उनमें जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण के संबंध में हैं। "उपयोग" "वितरण" और "नियंत्रण" शब्दों का व्यापक अर्थ है और उनके अंतर्गत उक्त जलों का विनियमन और विकास भी आ सकेगा। उक्त उपबंधों से न्यायनिर्णयन की परिधि की व्यापकता स्पष्ट रूप में उपदर्शित होती है क्योंकि उसके अंतर्गत उक्त जलों के उपयोग की सीमा और रीति का अवधारण, और उसकी बाबत निदेश देने की शक्ति भी आएगी। उक्त अनुच्छेद की भाषा को प्रविष्टि 56 और प्रविष्टि 17 की भाषा से भी प्रभेदित किया जाना है। अनुच्छेद 262(1) में किसी विवाद या परिवाद के न्यायनिर्णयन का उल्लेख है और वह भी किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटी के या

उसमें जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत, जब कि प्रविष्टि 56 में अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का उल्लेख है। इस प्रकार अनुच्छेद 262 और प्रविष्टि 56 के बीच अंतर यह है कि पूर्वकथित में किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटी के जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत विवादों के न्यायनिर्णयन का उल्लेख है, जबकि प्रविष्टि 56 में अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार प्रविष्टि 17 में, प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जल अर्थात्, जल प्रदायों, सिंचाई और नहरों, जल निकास और तटबंधों, जल भंडारकरण और जल शक्ति का उल्लेख किया गया है। उसमें समग्रतः अन्तरराज्यिक नदी या विवादों के न्यायनिर्णयन का उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि वस्तुतः वह ऐसा नहीं कर सकता है क्योंकि राज्य केवल अपने राज्यक्षेत्र के अंतर्गत आने वाले जल के विषय में ही कार्रवाई कर सकता है। अनुच्छेद 262, प्रविष्टि 56 और प्रविष्टि 17 के बीच इन अंतरों को ध्यान में रखना आवश्यक है क्योंकि अध्यादेश की विधिमान्यता के संबंध में तर्कों और प्रतितर्कों का उनसे संबंध है। (पैरा 64)

अधिनियम के प्रमुख उपबंधों से स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि नाम के अतिरिक्त, अधिनियम संसद् द्वारा अन्तरराज्यिक नदियों या नदी घाटियों के या उन में जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण के संबंध में तटवर्ती राज्यों के बीच विवादों के न्यायनिर्णयन हेतु विनिर्दिष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 262 के उपबंधों के अनुसरण में अधिनियमित किया गया है। उक्त अधिनियम प्रविष्टि 56 से संयोज्य नहीं है और इसलिए उसके अंतर्गत प्रविष्टि 56 या प्रविष्टि 17 द्वारा अधिभुक्त (आविष्ट) क्षेत्र नहीं आता है। चूंकि उक्त विवादों के न्यायनिर्णयन का विषय विनिर्दिष्ट रूप से और अनन्यतः अनुच्छेद 262 के अन्तर्गत आता है, अतः आवश्यक विवक्षा द्वारा, उक्त विषय प्रविष्टि 56 और 17 के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र से अपवर्जित किया गया है। अतः प्रविष्टि 56 के अधीन संसद् के लिए या प्रविष्टि 17 के अधीन राज्य विधानमंडल के लिए उक्त विवादों के न्यायनिर्णयन का उपबंध करने वाला विधान या ऐसा विधान अधिनियमित करना अनुज्ञेय नहीं है, जो किसी भी रीति में अनुच्छेद 262 के अधीन विधि द्वारा स्थापित न्यायनिर्णयन हेतु मशीनरी की न्यायनिर्णयनकारी प्रक्रिया या न्यायनिर्णयन को प्रभावित करे या उसमें हस्तक्षेप करे। यह बात इस तथ्य के अतिरिक्त है कि राज्य सरकार अन्यथा भी न्यायनिर्णयन का उपबंध करने या अपने राज्यक्षेत्र के परे अन्तरराज्यिक नदी जलों की बाबत या ऐसे जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण से संबंधित, उसके और किसी अन्य राज्य के बीच विवादों के संबंध में न्यायनिर्णयनकारी प्रक्रिया या किए गए न्यायनिर्णयन को प्रभावित करने में अक्षम होगा। ऐसा कोई भी अधिनियम प्रकृति में राज्यक्षेत्रातीत और इसलिए उसकी सक्षमता के परे होगा। (पैरा 67)

श्री वेणुगोपाल ने इस संबंध में यह दलील दी है कि संघ सूची की प्रविष्टि 97 अन्तरराज्यिक नदी जलों के उपयोग, वितरण और नियंत्रण के विषय के संबंध में है। ऐसी नदियों के जलों का उपयोग, वितरण और नियंत्रण, स्वतः ऐसा विषय नहीं है, जो अनुच्छेद 262 के अंतर्गत आता है। उनके अनुसार, वह प्रविष्टि 56 के अंतर्गत आने वाला विषय भी नहीं है, जिसमें केवल अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और

विकास का उल्लेख है, जिसका अर्थ यह हुआ कि उसमें समग्र रूप से नदियों और नदी घाटियों का उल्लेख है, न कि किसी विशेष स्थान पर या में जलों का। इसके अतिरिक्त, उनके अनुसार, विनियमन और विकास का, विभिन्न तटवर्ती राज्यों के बीच अन्तरराज्यिक नदी के जलों के उपयोग, वितरण या प्रभाजन से कोई संबंध नहीं है। अतः यह माना जाना चाहिए कि यह विषय उक्त अवशिष्टीय प्रविष्टि 97 के अंतर्गत आता है। विद्वान् काउंसेल के प्रति सम्यक् सम्मान दर्शित करते हुए, प्रविष्टि 97 का यह निर्वचन स्वीकार करना संभव नहीं है। प्रथमतः, ऐसा इस कारण है कि प्रविष्टि 56 में, "अंतरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास" पद के अंतर्गत तटवर्ती राज्यों के बीच अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के जलों का उपयोग, वितरण और प्रभाजन आएगा। अन्यथा संघ द्वारा विनियमन और विकास को अपने नियंत्रण में लिए जाने के लिए उपबंध करने का संविधान सभा का आशय निरर्थक हो जाता है और उससे किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती है। इसके अतिरिक्त, नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 के अंतर्गत, जो स्वीकृततः अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास के लिए प्रविष्टि 56 के अधीन अधिनियमित किया गया है, अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के जलों के उपयोग, वितरण और प्रभाजन का क्षेत्र भी आता है। इससे यह दर्शित होता है कि प्रविष्टि 56 में "अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास" पद का विधायी रूप से भी इस प्रकार अर्थान्वयन किया गया है कि उसके अंतर्गत तटवर्ती राज्यों के बीच अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के जलों का उपयोग, वितरण और प्रभाजन भी आता है। न्यायालय का यह भी मत है कि प्रविष्टि 17 के प्रवर्तन को राज्य की सीमाओं के अंदर अन्तरराज्यिक नदी और नदी घाटियों के जलों तक ही सीमित रखने और राज्य विधानमंडल की, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, उसके राज्यक्षेत्र से परे ऐसी नदी या नदी-घाटी के जलों के उपयोग, वितरण और प्रभाजन में हस्तक्षेप करने या उसे प्रभावित करने या उसे विस्तारित करने के लिए सक्षमता का प्रत्याख्यान करने के लिए, अवशिष्टीय प्रविष्टि 97 का अवलंब लेना आवश्यक नहीं है, क्योंकि प्रविष्टि 56 के अधीन समुचित घोषणा पर्याप्त होगी। हमारे जैसे परि-संघीय संविधान का आधार ऐसे निर्वचन को समादिष्ट करता है और वह इसके विपरीत निर्वचन को स्वीकार नहीं करेगा, जिससे स्वयं संविधान और सांविधानिक स्कीम ही नष्ट हो जाएगी। अतः, यद्यपि तकनीकी रूप से अंतरराज्यिक नदी और नदी-घाटी के विनियमन और विकास को उसके जल के उपयोग, वितरण और प्रभाजन से पृथक् करना संभव है, तथापि ऐसा करना न तो उचित है और न आवश्यक ही। (पैरा 69).

सुसंगत विधिक उपबंधों के उपर्युक्त विश्लेषण से, जो अन्तरराज्यिक नदियों और नदी-घाटियों और उनके जलों के संबंध में है, यह दर्शित होता है कि अधिनियम, अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 केवल संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन ही अधिनियमित किया जा सकता है और किया भी गया है। वह प्रविष्टि 56 के अधीन अधिनियमित नहीं किया गया है क्योंकि वह विवादों के न्यायनिर्णयन के संबंध में है और समग्रतः अन्तरराज्यिक नदी या उसके जलों का कोई अन्य पहलू उससे सम्बद्ध नहीं है। (पैरा 70).

1991(11) eILR(PAT) SC 16

यद्यपि अन्तरराज्यिक नदी के जल तटवर्ती राज्यों के राज्यक्षेत्रों से होकर जाते हैं, तथापि ऐसे जल किसी राज्य में स्थित नहीं माने जा सकते हैं। वे प्रवाह की स्थिति में रहते हैं और कोई भी राज्य ऐसे जलों के अनन्य स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता है, जिससे कि अन्य राज्यों को उनके साम्यापूर्ण अंश से वंचित किया जा सके। अतः ऐसे जलों की बाबत, कोई भी राज्य ऐसे जलों के उपयोग के लिए प्रभावी रूप से विधान नहीं बना सकता है, क्योंकि उसकी विधायी शक्ति उसके राज्यक्षेत्रों से परे नहीं जाती है। इसके अतिरिक्त, तटवर्ती राज्यों के बीच जलों के वितरण और प्रभाजन का यह अभिस्वीकृत सिद्धांत है कि ऐसा प्रत्येक राज्य के साम्यापूर्ण अंश के आधार पर किया जाना है। यह प्रश्न कि साम्यापूर्ण अंश क्या होगा, प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। (पैरा 72)

अध्यादेश असंवैधानिक है क्योंकि उससे केंद्रीय अधिनियम अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम के अधीन नियुक्त अधिकरण की अधिकारिता प्रभावित होती है, जो विधान संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन बनाया गया है। अध्यादेश के उपबंधों का विश्लेषण करने से यह प्रकट होता है कि उसका स्पष्ट प्रयोजन तारीख 25 जून, 1991 को अधिकरण द्वारा पारित अंतरिम आदेश के प्रभाव को अकृत करना है। अध्यादेश द्वारा उक्त तथ्य को रहस्य नहीं बनाया गया है और फाइल किए गए लिखित कथन तथा कर्नाटक राज्य की ओर से किए गए निवेदनों से यह दर्शित होता है कि (चूंकि) कर्नाटक राज्य के अनुसार, अधिकरण को कोई अन्तरिम आदेश पारित करने या कोई अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है, जैसा कि उसने तारीख 25 जून, 1991 के आदेश द्वारा किया है, अतः उक्त आदेश अधिकारितारहित है और इसलिए आदितः शून्य है। ऐसी स्थिति में वह कर्नाटक के अनुसार, धारा 6 के अर्थान्तर्गत विनिश्चय नहीं है और उसके लिए आबद्धकर नहीं है तथा उक्त आदेश के संभावित प्रभावों के विरुद्ध अपना संरक्षण करने के लिए, अध्यादेश जारी किया गया था। इस प्रकार कर्नाटक राज्य ने अनधिकार चेष्टा करते हुए एकपक्षीय रूप से यह विनिश्चय करने की शक्ति स्वयं अपने हाथ में ले ली है कि क्या अधिकरण को अन्तरिम आदेश पारित करने की अधिकारिता प्राप्त है या नहीं और क्या उक्त आदेश उसके लिए आबद्धकर है या नहीं। दूसरे, राज्य ने यह उपधारणा भी की है कि जब तक अधिकरण द्वारा अंतिम आदेश पारित नहीं किया जाता है, राज्य को, निचले तटवर्ती राज्यों पर ऐसी कार्यवाही के परिणामों से अनभिज्ञ और असंबद्ध रहते हुए, स्वयं अपने के लिए कावेरी नदी के जलों का विनियोजन करने की शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार कर्नाटक ने यह उपधारणा की है कि उसे उक्त जलों की बाबत बेहतर अधिकार प्राप्त हैं और वह उनके विषय में किसी भी रीति में कार्यवाही कर सकता है। इस प्रक्रिया में कर्नाटक राज्य ने यह उपधारणा भी की है कि निचले तटवर्ती राज्यों को कोई साम्यापूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं है और वह उक्त जलों में अन्य तटवर्ती राज्यों के अंश का एकमात्र निर्णायक है। इसके अतिरिक्त, कर्नाटक राज्य ने स्वयं अपने वाद में निर्णायक की भूमिका अपना ली है। इस प्रकार इस तथ्य के अतिरिक्त कि अध्यादेश द्वारा तारीख 25 जून, 1991 के अधिकरण के विनिश्चय को प्रत्यक्ष रूप से अकृत किया गया है, उसके द्वारा इस न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के विनिश्चय को भी चुनौती दी गई है, जिसमें यह विनिर्णय किया गया है कि अधिकरण को अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने के प्रश्न पर विचार करने की शक्ति प्राप्त है, क्योंकि वह उसे विनिर्दिष्ट रूप से निर्देशित किया गया था। इसके अतिरिक्त

अध्यादेश का क्षेत्रातीत प्रवर्तन भी है, क्योंकि उसके द्वारा कावेरी नदी के जलों की बाबत तमिलनाडु और पांडिचेरी के साम्यापूर्ण अधिकारों में हस्तक्षेप किया गया है। उस सीमा तक, जिस तक अध्यादेश द्वारा इस न्यायालय के और केंद्रीय विधान के अधीन नियुक्त अधिकरण के विनिश्चय में हस्तक्षेप किया गया है, वह स्पष्टतः असंवैधानिक है, क्योंकि वह न केवल संविधान के अनुच्छेद 262 के उपबंधों के प्रत्यक्ष विरोध में है, जिसके अधीन उक्त अधिनियमिति बनाई गई है, बल्कि वह राज्य की न्यायिक शक्ति के विरोध में भी है।

(पैरा 73)

नजीरों से जो सिद्धांत सामने आता है वह यह है कि विधानमंडल उस आधार पर परिवर्तन कर सकता है जिस पर न्यायालय द्वारा विनिश्चय किया गया है और इस प्रकार वह सामान्यतः विधि में परिवर्तन कर सकता है, जो व्यक्तियों के वर्ग और सामान्य घटनाओं को प्रभावित करेगी। तथापि वह पक्षकारों के बीच व्यक्तिगत विनिश्चय को अपास्त नहीं कर सकता है और केवल उनके अधिकारों, दायित्वों को प्रभावित नहीं कर सकता। विधान मंडल का ऐसा कार्य राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने और अपील न्यायालय या अधिकरण के रूप में कृत्य करने की कोटि में आता है। (पैरा 76)

संविधान के अनुच्छेद 262 के साथ पठित, वर्तमान अधिनियम, अर्थात् अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम की धारा 11 के उपबंधों का प्रभाव यह है कि राज्य की, और इसलिए उच्चतम न्यायालय सहित सभी न्यायालयों की किसी अंतरराज्यिक नदी या नदी घाटियों के जल के उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत मूल विवाद या परिवाद का न्यायनिर्णयन करने की संपूर्ण न्यायिक शक्ति उक्त अधिनियम की धारा 4 के अधीन नियुक्त अधिकरण में निहित की गई है। अतः यह निवेदन स्वीकार करना संभव नहीं है कि अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने का प्रश्न उक्त उपबंधों की परिधि के बाहर है और वह संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन उठाया जा सकता है। अतः राज्य का कोई भी कार्यपालक आदेश या विधायी अधिनियमिति, जो न्यायनिर्णयन प्रक्रिया और ऐसे अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णयन में हस्तक्षेप करते हैं, राज्य की न्यायिक शक्ति में हस्तक्षेप है। इस तथ्य को देखते हुए कि प्रश्नगत अध्यादेश द्वारा तारीख 25 जून, 1991 को अधिकरण द्वारा पारित आदेश का प्रत्यक्ष रूप से अकृत किया जाना ईप्सित है, वह राज्य की न्यायिक शक्ति के विरुद्ध है और इसलिए वह संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य (बाहर) है। (पैरा 77)

इसके अतिरिक्त, स्वीकृततः अध्यादेश का प्रभाव तमिलनाडु और पांडिचेरी राज्यक्षेत्र में कावेरी नदी के जल के प्रवाह को प्रभावित करना है। अतः उस आधार पर अध्यादेश राज्य की विधायी सक्षमता से परे है और संविधान के अनुच्छेद 245(1) के उपबंधों द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य (बाहर) है। (पैरा 78)

अध्यादेश विधिसम्मत शासन के आधारभूत सिद्धांतों के भी विरुद्ध है क्योंकि कर्नाटक राज्य ने अध्यादेश जारी करके विधि को स्वयं अपने हाथ में लेने और विधि से ऊपर होने का प्रयास किया है। ऐसा कार्य अव्यवस्था (विधि विहीनता) और अराजकता को निमंत्रण है क्योंकि अध्यादेश राज्य की ओर से स्वयं अपने ही वाद में न्यायाधीश होने और न्यायिक प्राधिकरणों के विनिश्चयों की अवज्ञा करने की इच्छा का प्रकटीकरण है। यह कार्यवाही

संविधान के अधीन संघीय ढांचे के लिए बुरे परिणामों की पूर्वसूचक है और न केवल अन्य राज्यों के अधिकारों, संसद् के अधिनियम के अधीन गठित अभिकरणों द्वारा पारित आदेशों, बल्कि संविधान के उपबंधों की भी उपेक्षा करते हुए, स्वेच्छानुसार कार्य करने के लिए प्रत्येक राज्य के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। यदि ऐसा अध्यादेश जारी करने की राज्य की शक्ति को मान्यता दे दी जाती है, तो उसके परिणामस्वरूप सांविधानिक मशीनरी भंग हो जाएगी और राष्ट्र की एकता और अखंडता प्रभावित होगी। (पैरा 79)

चूंकि वर्तमान आदेश ऐसे विषय पर, जो निदेश का भाग था, जैसा कि इस न्यायालय ने उक्त विनिश्चय में अभिनिर्धारित किया है, 1991 की सी० ए० (सिविल अपील) सं० 303-4 में इस न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के विनिश्चय के अनुसरण में किया गया है, अतः वह धारा 5(2) के अधीन रिपोर्ट और विनिश्चय ही है, कोई और चीज नहीं। और उसे अधिनियम की धारा 6 के अधीन प्रकाशित किया जाना है जिससे कि उसे प्रभावी और पक्षकारों के लिए आबद्धकर बनाया जा सके। उक्त आदेश की इस विधिक स्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। अधिनियम के अधीन उसकी प्रभावकारिता को प्रश्नगत करने का अर्थ उसका उल्लंघन करना होगा। (पैरा 99)

इस प्रश्न पर कि क्या संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन वर्तमान निर्देश जैसे राष्ट्रपति के निर्देश पर इस न्यायालय द्वारा दी गई राय सभी न्यायालयों के लिए आबद्धकर है, न्यायालय के समक्ष काफी विस्तार से विचार किया गया, तथापि उक्त प्रश्न पर राय अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रथमतः उक्त प्रश्न निर्देश का भाग नहीं है, और दूसरे, उस पर न्यायालय द्वारा व्यक्त की जाने वाली कोई भी राय प्रकृति में परामर्श मात्र होगी। अतः इस मामले को इसी प्रक्रम पर पर छोड़ा जा रहा है। न्यायनिर्णयन के रूप में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि परामर्श के रूप में दी गई राय को महत्त्व और सम्मान दिया जाना चाहिए और सामान्यतः उसका अनुसरण किया जाता है। न्यायालय यह महसूस करता है कि उक्त मत, जो इस समय प्रभावी है, और अधिक उचित समय आने तक, उपयोगी रूप में प्रभावी बना रहेगा। (पैरा 100)

अतः निर्देशित प्रश्नों पर न्यायालय की राय इस प्रकार है :—

प्रश्न सं० 1—कर्नाटक के राज्यपाल द्वारा तारीख 25 जुलाई, 1991 को पारित कर्नाटक कावेरी द्रोणी सिंचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991 (अब अधिनियम) राज्य की विधायी सक्षमता से परे है और इसलिए वह संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य है।

प्रश्न सं० 2—(i) अधिकरण का तारीख 25 जून, 1991 का आदेश अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय (गठित करता) है।

(ii) अतः अधिनियम की धारा 6 के अधीन उक्त आदेश का केन्द्रीय सरकार द्वारा राजपत्र में प्रकाशित किया जाना आवश्यक है जिससे कि उसे प्रभावी बनाया जा सके।

प्रश्न सं० 3—(i) अधिनियम के अधीन जल विवाद अधिकरण विवाद के पक्षकारों को कोई अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए सक्षम है, जब केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसा निर्देश किया जाता है,

(ii) यह प्रश्न कि क्या अधिकरण को अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने की शक्ति प्राप्त है, जब केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे अनुतोष के लिए कोई निर्देश नहीं किया गया है, ऐसा प्रश्न है, जो वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उद्भूत नहीं होता है, जिनमें यह निर्देश किया गया है। अतः उसका उत्तर आवश्यक नहीं है। (पैरा 101)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1991]	[1991] 4 उम० नि० प० (नवम्बर अंक)=जे० टी० 1991 (3) एस० सी० 617 : दिल्ली न्यायिक सेवा संगम, तीस हजारी कोर्ट, दिल्ली आदि बनाम गुजरात राज्य और अन्य;	87
[1987]	[1987] 2 उम० नि० प० 743=(1987) 1 एस० सी० आर० 879 : पी० सांबमूर्ति और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य;	75
[1984]	[1984] 3 उम० नि० प० 661=(1984) 2 एस० सी० आर० 495 : आर० एस० नायक बनाम ए० आर० अंतुले;	89
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 1252=(1978) 3 एस० सी० आर० 334 : मदन मोहन पाठक बनाम भारत संघ और अन्य;	74
[1975]	[1975] 3 उम० नि० प० 1097=(1971) 1 एस० सी० आर० 228 : अहमदाबाद नगर निगम आदि बनाम न्यू श्राक स्पिनिंग एण्ड वीविंग कंपनी लिमिटेड आदि;	74
[1955]	(1955) 2 एस० सी० आर० 603 : दि बंगाल इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य;	85
[1955]	(1955) 1 एस० सी० आर० 1104 : हरिविष्णु कामथ बनाम सैयद अहमद इशाक और अन्य;	86
[1954]	ए० आई० आर० 1954 मुम्बई 351 : मुम्बई राज्य बनाम गजानन महादेव बादले;	87
[1949]	(1949) एफ० सी० आर० 595 : जतीन्द्र नाथ गुप्त बनाम बिहार प्रांत और अन्य;	86

(206) यू० एस० 46 : 71
स्टेट ऑफ कंसास बनाम स्टेट आफ कोलोरेडो।

प्रभेदित निर्णय

[1988] [1988] 1 उम० नि० प० 1=(1988) सप्ली० 1 एस० सी० आर० 1 : 89
ए० आर० अंतुले बनाम आर० एस० नायक और एक अन्य;

[1951] (1951) एस० सी० आर० 747 : 85
दिल्ली विधि अधिनियम, 1912, वाला मामला और अजमेर-मेवाड़ (विधि विस्तार) अधिनियम, 1947 और भाग-ग राज्य (विधि) अधिनियम, 1955 वाले मामले।

परामर्श (सलाह) अधिकारिता : 1991 का विशेष निर्देश सं० 1.

संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन निर्देश।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री जी० रामस्वामी, महान्यायवादी वी० आर० रेड्डी, अपर महासालिसिटर, एफ० एस० नरीमन, टी० आर० अन्ध्यरुजिन, (डा०) वाई० एस० चितले, एस० एस० जावली, के० पाराशरन्, ए० के० गांगुली, के० के० वेणुगोपाल, ए० एस० नम्बियार, शांति भूषण, पी० पी० राव, पी० पी० मुथन्ना, के० सुब्रह्मण्यन्, क्यूरे जोसेफ, एन० एन० गंगादेव, (सुश्री) ए० सुभाषिणी, (सुश्री) निरंजना सिंह, ए० वीरप्पा, सुभाष शर्मा, मोहन कटर्की, अतुल चितले, के० एच० नवीन सिंह, सुब्बन्ना, ए० सुब्बा राव, जी० उमापति, ई० सी० अग्रवाल, पी० एन० रामलिंगम्, (श्रीमती) शांता वासुदेवन्, पी० कृष्णा मूर्ति, पी० के० मनोहर, के० वी० विश्वनाथन्, खालिद रिजवी, अशोक मुखोटी, (श्रीमती) संगीता गर्ग, जयन्त भूषण, टी० टी० कुन्हीकानन, एम० डी० बी० राजू, जी० प्रभाकर, एन० गणपति, एस० आर० भट पी० महाला और पी० आर० रामाशीष

मध्यक्षेपी की ओर से — सर्वश्री ए० के० सेन, वेंकटरामन् और सी० एस० वैद्यनाथन्

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी० बी० सावंत ने दिया।

न्या० सावंत—तारीख 27 जुलाई, 1991 को राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन इस न्यायालय को, उसकी राय के लिए, तीन प्रश्न निर्देशित किए। निर्देश इस प्रकार है—

"यतः अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 4 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार ने अन्तरराज्यिक नदी कावेरी से संबंधित जल विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए तारीख 2 जून, 1990 की अधिसूचना द्वारा, जिसकी एक प्रति इससे उपाबद्ध है, कावेरी जल विवाद अधिकरण (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिकरण" कहा गया है) नामक जल विवाद अधिकरण गठित किया;

यतः तारीख 25 जून, 1991 को अधिकरण ने एक अन्तरिम आदेश (जिसे इसमें इसके पश्चात् "आदेश" कहा गया है) पारित किया, जिसकी एक प्रति इससे उपाबद्ध है;

यतः आदेश के कतिपय पहलुओं के संबंध में मतभेद उत्पन्न हो गए हैं;

यतः तारीख 25 जुलाई, 1991 को कर्नाटक के राज्यपाल ने कर्नाटक कावेरी द्रोणी सिंचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अध्यादेश" कहा गया है) प्रख्यापित किया, जिसकी एक प्रति इससे उपाबद्ध है;

यतः उक्त अध्यादेश और उसके उपबंधों की सांविधानिक मान्यता के संबंध में संदेह व्यक्त किए गए हैं,

यतः अध्यादेश के उपबंधों और तदधीन की गई किसी भी कार्यवाही की सांविधानिक वैधता को न्यायालयों में चुनौती दिए जाने की संभावना है, जिसमें लम्बी और परिहार्य मुकदमेबाजी अन्तर्वलित होगी;

यतः उक्त मतभेदों और संदेहों ने एक लोक विवाद को जन्म दिया है, जिसके अवांछनीय परिणाम हो सकते हैं;

और यतः इसमें इससे पूर्व जो कुछ कहा गया है उसे देखते हुए, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि विधि के निम्नलिखित प्रश्न उद्भूत हुए हैं और वे ऐसी प्रकृति और ऐसे लोक महत्त्व के हैं कि उन पर भारत के उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन है;

अतः अब भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, मैं रामस्वामी वेंकटरामन्, भारत का राष्ट्रपति, एतद्द्वारा निम्नलिखित प्रश्न भारत के उच्चतम न्यायालय को, विचारार्थ और उस पर रिपोर्ट हेतु, निर्देशित करता हूं, अर्थात् :

(1) क्या उक्त अध्यादेश और उसके उपबंध संविधान के उपबंधों के अनुसार हैं;

(2) (i) क्या उक्त अधिकरण का आदेश अधिनियम की धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय गठित करता है; और (ii) क्या अधिकरण के आदेश का, उसे प्रभावी बनाने के लिए, केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित किया जाना आवश्यक है;

(3) क्या अधिनियम के अधीन गठित जल विवाद अधिकरण विवाद के पक्षकारों को कोई अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए सक्षम है।"

2. निर्देशित प्रश्नों और हमारे उत्तरों के महत्व का विवेचन करने के लिए उस ताथ्यिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है, जिसके परिणामस्वरूप यह निर्देश किया गया है।

3. कावेरी नदी अन्तरराज्यिक नदी है और वह दक्षिणी प्रायद्वीप की बड़ी नदियों में से एक है। उक्त नदी और उसकी सहायक नदियों का द्रोणी-क्षेत्र दोनों राज्यों, अर्थात् कर्नाटक और तमिल नाडु के राज्य क्षेत्रों में काफी फैला हुआ है; कर्नाटक ऊपरी तटवर्ती राज्य है और तमिल नाडु निचला तटवर्ती राज्य है। अन्य क्षेत्र, जो इस नदी जल के हिताधिकारी हैं, केरल राज्य और पाण्डिचरी संघ राज्य क्षेत्र में समाविष्ट राज्य क्षेत्र हैं। अपने शीर्ष से बंगाल की खाड़ी में गिरने तक, नदी की कुल लम्बाई 802 किलो मीटर है। यह नदी, कर्नाटक और तमिल नाडु की सीमा में पहुंचने से पूर्व दक्षिण-पूर्वी दिशा में लगभग 381 किलो मीटर लम्बा मार्ग तय करती है। वह लगभग 64 किलो मीटर की लम्बाई तक उक्त दोनों राज्यों के बीच सीमा भी गठित करती है और उसके पश्चात् समुद्र में मिलने से पूर्व तमिल नाडु में लगभग 357 किलो मीटर की यात्रा पूरी करती है।

4. उन क्षेत्रों के बीच, जो इस समय मुख्यतः कर्नाटक और तमिल नाडु राज्य में समाविष्ट हैं और जो करारों के समय एक ओर तत्कालीन मद्रास प्रेसीडेंसी और दूसरी ओर मैसूर राज्य में समाविष्ट थे, नदी जल को बांटने के लिए 1892 और 1924 में दो करार किए गये। अन्तिम करार वर्ष 1974 में समाप्त हो गया। इस समय नदी की परिधि में कर्नाटक, तमिल नाडु और केरल के तीन राज्य और पाण्डिचेरी संघ राज्य क्षेत्र आते हैं। वर्तमान तमिल नाडु राज्य का कावेरी नदी द्रोणी का लगभग 43,868 वर्ग किलो मीटर का क्षेत्र है, और यह द्रोणी क्षेत्र अब कम हो गया है, जो करार के समय लगभग 49,136 वर्ग किलो मीटर था। इसके विपरीत, उक्त नदी का द्रोणी क्षेत्र, जो मैसूर राज्य में लगभग 28,887 वर्ग किलो मीटर था, वर्तमान कर्नाटक राज्य में बढ़ कर लगभग 34,273 वर्ग किलो मीटर हो गया है।

5. कर्नाटक राज्य के अनुसार, कर्नाटक, तमिल नाडु और केरल द्वारा कावेरी नदी के प्रवाहों को किए गए योगदान क्रमशः 425 टीएमसी, 252 टीएमसी और 113 टीएमसी हैं, कुल मिला कर जिनका योग 790 टीएमसी बनता है। तमिल नाडु राज्य के अनुसार, उक्त तीनों राज्यों के योगदान क्रमशः 392 टीएमसी 222 टीएमसी और 126

टीएमसी हैं, कुल मिला कर जिनका योग 740 टीएमसी बनता है। वर्ष 1974 में केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अध्ययन दल ने संबंधित राज्यों के विनियोग निकाले जो इस प्रकार हैं—कर्नाटक—177 टीएमसी, तमिल नाडु, जिसमें पाण्डिचेरी सम्मिलित है,—489 टीएमसी और केरल—5 टीएमसी।

6. वर्ष 1956 में संसद् ने अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास के प्रयोजन के लिए नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 तथा पूर्वोक्त जलों के उपयोग, वितरण और नियंत्रण से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 अधिनियमित किया। वर्ष 1970 में तमिल नाडु ने अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 3 के उपबंधों का अवलम्ब लिया और केन्द्रीय सरकार से दोनों राज्यों, अर्थात् तमिल नाडु और कर्नाटक के बीच विवाद का अधिनियम के अधीन एक अधिकरण को निर्देश किए जाने के लिए अनुरोध किया। केन्द्रीय सरकार ने उक्त दोनों राज्यों के बीच बातचीत आरम्भ की। इसके साथ ही तमिल नाडु राज्य ने, एक अधिकरण गठित करने और उसे विवाद निर्देशित करने के लिए संघ सरकार को निदेश की ईप्सा करते हुए, संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन एक वाद के माध्यम से इस न्यायालय में समावेदन किया (1971 का वाद सं० 1)। उक्त वाद में तमिल नाडु ने कर्नाटक राज्य को उसमें वर्णित परियोजनाओं के संबंध में आगे कार्रवाई करने और उनका निष्पादन करने से अवरुद्ध करने के लिए अन्तरिम आदेश हेतु आवेदन किया। तारीख 25 जनवरी, 1971 के अपने आदेश द्वारा इस न्यायालय ने अन्तरिम अनुतोष हेतु आवेदन खारिज कर दिया।

7. ऐसा प्रतीत होता है कि इस बीच दोनों राज्यों के बीच चल रही बातचीत के परिणामस्वरूप जून, 1972 में एक तथ्यान्वेषी समिति गठित की गई, जो, अन्य बातों के साथ-साथ, नदी-द्रोणी के अंतर्गत संबंधित राज्यों में क्षेत्रों की प्रकृति जल संसाधनों की उपलभ्यता, और उपयोग की सीमा और उनकी अध्यपेक्षाओं के संबंध में तथ्य अभिनिश्चित करने के लिए गठित की गई। समिति के गठन को देखते हुए तमिलनाडु ने अपना वाद वापस ले लिया।

8. तथ्यान्वेषी समिति ने दिसम्बर, 1972 और अगस्त, 1973 में अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। भारत सरकार के सिंचाई मंत्रालय में तत्कालीन अपर सचिव, श्री सी० सी० पटेल की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय अध्ययन दल भी कावेरी द्रोणी में तीनों राज्यों की विद्यमान और योजनाबद्ध परियोजनाओं में जल की बचत को निर्धारित करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए गठित किया गया। कावेरी द्रोणी के अन्दर संकर्मों को सशक्त बनाने चैनलों की लाईनिंग, जलाशयों के एकीकृत प्रचालनों, प्रभावित क्षेत्र में जल अपेक्षा के वैज्ञानिक निर्धारण सहित, सिंचाई पद्धति के सुधार और आधुनिकीकरण पर, तथा वर्षा और प्रभाव तथा अपेक्षा और निर्मोचन के बीच दक्षतापूर्ण संतुलन बनाए रखने के लिए, जलाशयों से निर्मोचनों के मानीटरन के लिए अध्ययन दल की सिफारिशें जून, 1974 के अन्तरराज्यिक सम्मेलन में घोषित की गईं।

9. आगे बातचीत के परिणामस्वरूप "1976 वाला समझौता" किया गया। इस समझौते में तमिल नाडु, कर्नाटक और केरल राज्यों में क्रमश: 30:53:17 के अनुपात में

अधिशेष जल का प्रभाजन परिकल्पित किया गया। बचत के मामले में, अध्ययन दल ने कर्नाटक को 87 टीएमसी, तमिल नाडु को 4 टीएमसी और केरल को 34 टीएमसी के अनुपात में प्रभाजन की प्रस्थापना की।

10. ऐसा प्रतीत होता है कि तथ्यान्वेषी समिति और संघ सरकार द्वारा स्थापित (गठित) अध्ययन दल के माध्यम से एकत्र जानकारी के बावजूद, बातचीत सफल नहीं रही। वर्ष 1983 में तमिलनाडु रैयत संगम ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष एक याचिका (1983 की रिट याचिका सं० 13347) उपस्थापित की। उससे अधिनियम के अधीन विवाद अधिकरण को निर्देशित करने की उपेक्षा करते हुए, उक्त याचिका में केन्द्रीय सरकार को परमादेश रिट जारी किए जाने की ईप्सा की गई। याचिका के साथ एक आवेदन भी संलग्न किया गया, जिसमें अन्तरिम अनुतोष की ईप्सा की गई। तमिल नाडु राज्य ने रिट याचिका का समर्थन किया। संघ सरकार और कर्नाटक राज्य सहित, प्रत्यर्थियों को सूचनाएं जारी की गई। लगभग 7 वर्ष तक याचिका इस न्यायालय में लम्बित रही। इस अवधि के दौरान अन्तरिम अनुतोष के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया।

11. यद्यपि इस अवधि के दौरान अन्तरराज्यिक बैठकें की जातीं रहीं, तथापि कोई सार्थक बात सामने नहीं आई। अतः जून, 1986 में तमिल नाडु राज्य ने अधिनियम की धारा 3 के अधीन अधिकरण के गठन के लिए और उसे न्यायनिर्णयन हेतु जल विवाद के निर्देश के लिए केन्द्रीय सरकार के समक्ष अनुरोध पत्र प्रस्तुत किया। उक्त पत्र में तमिल नाडु ने मुख्यतः कर्नाटक क्षेत्र में संकर्मों के संन्निर्माण और प्रतिस्रोत जल के प्रभाजन के विरुद्ध शिकायत की, जिससे तमिल नाडु राज्य में अनुस्रोत जल की बाबत उसके हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। उसमें 1892 और 1924 के करारों के कार्यान्वयन की भी ईप्सा की गई, जो 1974 में समाप्त हो गए थे।

12. तमिल नाडु रैयत संगम द्वारा फाइल की गई रिट याचिका की सुनवाई के दौरान, केन्द्रीय सरकार ने मामला न्यायालय पर छोड़ दिया। इस न्यायालय ने वार्ता के अनुक्रम और समय की अवधि को ध्यान में रखते हुए, जो व्यतीत हो गई थी, तारीख 4 मई, 1990 के अपने निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि दोनों राज्यों के बीच वार्ता असफल हो गई थी, और संघ सरकार को अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिकरण गठित करने के लिए निदेश किया। इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसरण में, संघ सरकार ने तारीख 2 जून, 1990 की अपनी अधिसूचना द्वारा कावेरी जल विवाद अधिकरण गठित किया और उसी तारीख की एक अन्य अधिसूचना द्वारा उसे तारीख 6 जुलाई, 1986 के तमिल नाडु के अनुरोध पत्र से उत्पन्न होने वाला विवाद निर्देशित किया।

13. कावेरी जल विवाद अधिकरण (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिकरण" कहा गया है) ने तारीख 20 जुलाई, 1990 को अपनी प्रथम बैठक की। उस दिन तमिल नाडु ने अन्तरिम अनुतोषों की ईप्सा करते हुए, अधिकरण के समक्ष एक पत्र प्रस्तुत किया। अधिकरण ने तमिल नाडु को समुचित आवेदन प्रस्तुत करने का निदेश किया। तदुपरि

तमिल नाडु और पाण्डिचेरी संघ राज्य क्षेत्र ने अन्तरिम अनुतोषों के लिए दो पृथक् आवेदन (1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 4 और 5) प्रस्तुत किए।

14. तमिल नाडु द्वारा दावाकृत अन्तरिम अनुतोष यह था कि कर्नाटक को तारीख 31 मई, 1972 को उनके द्वारा यथा परिबद्ध या यथाप्रयुक्त सीमा से परे कावेरी नदी जल को परिबद्ध न करने या उसका उपयोग न करने का निदेश किया जाए, जैसी कि द्रोणी राज्यों के मुख्य मंत्रियों और संघ के सिंचाई और विद्युत् मंत्री के बीच सहमति हुई थी। उसमें कर्नाटक को कावेरी द्रोणी में कोई नई परियोजनाएं, बांध, जलाशय नहरें आरम्भ करने और/या परियोजनाओं, बांधों जलाशयों और नहरों आदि के सन्निर्माण के संबंध में आगे कार्यवाही करने से अवरुद्ध करते हुए, आदेश पारित किए जाने की भी ईप्सा की गई।

15. अन्तरिम अनुतोष हेतु अपने आवेदन में पाण्डिचेरी ने अधिकरण की ओर से कर्नाटक और तमिल नाडु राज्य दोनों को सितम्बर से मार्च तक के मासों के दौरान उतना जल, जिसके बारे में पहले ही सहमति हो गई थी, अर्थात् 9.355 टीएमसी जल छोड़ने के लिए निदेश की ईप्सा की।

16. अधिकरण ने अन्तरिम अनुतोषों हेतु दोनों आवेदनों और मुख्य विवाद के विचारण को लागू होने वाली प्रक्रिया पर एक साथ विचार किया। उसने विवादी (विवाद-ग्रस्त) राज्यों को मामलों के कथनों के माध्यम से अपने अभिवचन फाइल करने का निदेश किया और कर्नाटक तथा केरल राज्यों से, तमिलनाडु और पाण्डिचेरी द्वारा अन्तरिम अनुतोषों के लिए किए गए आवेदनों के अपने उत्तर प्रस्तुत करने की भी अपेक्षा की। सितम्बर, 1990 तक सभी विवादग्रस्त राज्यों ने अभिवचनों या मामलों के कथनों का अपना प्रथम चक्र प्रस्तुत किया। नवम्बर, 1990 तक, कर्नाटक और केरल ने भी अन्तरिम अनुतोषों के लिए आवेदनों के अपने उत्तर प्रस्तुत किए। अधिकरण ने राज्यों को मुख्य विवाद में पहले फाइल किए गए मामलों के कथनों के उत्तर में अपने-अपने प्रति-कथन प्रस्तुत करने के लिए समय दिया।

17. ऐसा प्रतीत होता है कि विवादी (विवादग्रस्त) राज्यों द्वारा मुख्य विवाद में अपने प्रति-कथन प्रस्तुत किए जाने से पूर्व, अधिकरण ने अन्तरिम अनुतोषों के लिए आवेदनों की सुनवाई की क्योंकि तमिलनाडु ने इसी बीच, उसके अन्तरिम आवेदन—सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 4/90—पर अन्तिरिम आदेश होने तक, अत्यावश्यक उपाय के रूप में प्रथम किश्त के रूप में कम से कम 20 टीएमसी जल छोड़ने के लिए, कर्नाटक को निदेश देने हेतु अर्जेण्ट (अत्यावश्यक) याचिका के रूप में एक आवेदन (1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 9) फाइल किया। ऐसा प्रतीत होता है कि यह आवेदन इस आधार पर फाइल किया गया कि तमिलनाडु राज्य में मेत्तूर जलाशय में अतिरिक्त प्रदाय के बिना सांबा फसल खड़ी (कायम) नहीं रखी जा सकती थी। गुणागुण के आधार पर आवेदन का विरोध करने के अतिरिक्त, कर्नाटक और केरल, दोनों ही, ने अधिकरण की उक्त आवेदन को विचारार्थ ग्रहण करने और कोई अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की अधिकारिता पर प्रारम्भिक आक्षेप उठाया। प्रारम्भिक आक्षेप यह था कि अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण की सीमित अधिकारिता थी। उसे वे अन्तर्निहित शक्तियां प्राप्त नहीं थीं, जो किसी सामान्य सिविल

1991(11) eILR(PAT) SC 16

न्यायालय को प्राप्त होती हैं और विधि में ऐसा कोई उपबंध नहीं था, जिसके द्वारा अधिकरण को कोई अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए प्राधिकृत किया गया हो या अधिकारिता प्रदत्त की गई हो। अधिकरण ने प्रारम्भिक आक्षेप और गुणागुण, दोनों पर, पक्षकारों की सुनवाई की और तारीख 5 जनवरी, 1991 के अपने आदेश द्वारा, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिनिर्धारित किया—

"......यह अधिनियम; जहां तक विवाद के निर्देश का सम्बन्ध है, पूर्ण संहिता है। इन परिस्थितियों में, हमारी राय में, अधिकरण केवल जल विवाद या ऐसे विवादों का विनिश्चय करने के लिए प्राधिकृत है, जो उसे निर्देशित किए गए हैं। यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय है कि जल विवाद से सम्बद्ध या संगत कोई अन्य मामला है, जो पहले ही अधिकरण को निर्देशित किया जा चुका है, तो केन्द्रीय सरकार को उक्त मामला भी अधिनियम की धारा 4 के अधीन गठित अधिकरण को विवाद के रूप में निर्देशित करने की सदा छूट प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय सरकार द्वारा कोई भी जल विवाद तब तक निर्देशित नहीं किया जा सकता है, जब तक कि केन्द्रीय सरकार की यह राय न हो कि उक्त विवाद बातचीत द्वारा नहीं सुलझाया जा सकता है। वस्तुतः अधिकरण को निर्देश के बिना किसी भी जल विवाद का न्यायनिर्णयन नहीं किया जा सकता है।

अन्तरिम अनुतोषों पर, जिनकी ईप्सा की गई है, भले ही वे पहले निर्देशित जल विवाद से सम्बद्ध या संगत हों, विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उक्त मामलों की बाबत विवाद केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिकरण को निर्देशित नहीं किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, इन याचिकाओं में ऐसा कोई प्रकथन भी नहीं किया गया है कि अन्तरिम अनुतोष से संबंधित विवाद का बातचीत द्वारा समाधान नहीं किया जा सकता है और केन्द्रीय सरकार ने पहले ही यह राय बना ली है कि वह अधिकरण को निर्देशित किया जाएगा। यदि 1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 4, 5 और 9 के याची कर्नाटक राज्य के आचरण से स्वयं को व्यथित महसूस करते हैं और आपात स्थिति उत्पन्न हो गई थी, जैसा कि दावा किया गया है, तो वे केन्द्रीय सरकार के समक्ष विवाद उठा सकते थे और यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय थी कि उक्त विवाद का बातचीत द्वारा समाधान नहीं किया जा सकता है, तो केन्द्रीय सरकार द्वारा उक्त विवाद भी अधिकरण को निर्देशित किया जा सकता था। यदि ऐसा विवाद निर्देशित किया गया होता, तो अधिकरण को उक्त विवाद का विनिश्चय करने का अधिकार प्राप्त होता, जो विनिश्चय तब अन्तिम और पक्षकारों के लिए आबद्धकर होता।

× × ×

तारीख 6 जुलाई, 1986 के पत्र से, जो विवाद अधिकरण को निर्देशित करने के लिए तमिलनाडु राज्य की ओर से केन्द्रीय सरकार को अनुरोध के रूप में था, यह स्पष्ट है कि वह विवाद, जो इस अधिकरण को निर्देशित किया गया है, काबिनी, हेमावती, हारंगी, स्वर्णवती और अन्य परियोजनाओं का सन्निर्माण करने और क्षेत्रों (आयाकटों) का विस्तार करने में कर्नाटक राज्य द्वारा की गई कार्यपालक

कार्रवाई और कावेरी जल के उपयोग, वितरण और नियंत्रण से संबंधित, 1892 और 1924 के करारों को कार्यान्वित करने के लिए कर्नाटक सरकार की असफलता के सम्बन्ध में है। तमिलनाडु राज्य द्वारा किए गए अनुरोध की तारीख के पश्चात् वर्ष प्रतिवर्ष कर्नाटक सरकार द्वारा पानी छोड़े जाने के संबंध में कोई अन्तरिम विवाद अधिकरण को निर्देशित ही नहीं किया गया। अधिकरण से मुख्य जल विवाद का विनिश्चय करने के लिए कहा गया है, जो, जब उसका न्यायनिर्णयन हो जाएगा, निस्संदेह, पक्षकारों के लिए आबद्धकर होगा। उपर्युक्त बातों को देखते हुए, हमारी यह राय है कि अधिकरण अन्तरिम अनुतोष हेतु प्रार्थना विचारार्थ ग्रहण नहीं कर सकता है, जब तक कि उससे सम्बन्धित विवाद विनिर्दिष्ट रूप से अधिकरण को निर्देशित नहीं किया जाता है।

× × ×

उच्चतम न्यायालय द्वारा भारत संघ बनाम पारस लेमीनेट्स (प्रा०) लिमिटेड (1990) 4 एस० सी० सी० 453 वाले मामले में की गई मताभिव्यक्ति सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 के अधीन गठित अपील अधिकरण के सम्बन्ध में थी। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिकरण अपनी अधिकारिता की सीमाओं के अन्दर न्यायालय के रूप में कृत्य करता है। उसके अधिकारिता क्षेत्र को परिभाषित किया गया है किन्तु अपनी अधिकारिता की सीमाओं के अन्दर उसे, अभिव्यक्त रूप से और विवक्षित रूप से अनुदत्त सभी शक्तियां प्राप्त हैं। उच्चतम न्यायालय ने, किसी विशेष कानून द्वारा किए गए "प्रदान" की बाबत अधिकरण की शक्ति की सीमा पर विचार करते समय, यह अभिनिर्धारित किया कि अधिकरण को ऐसे सभी कार्य करने या ऐसे सभी उपाय प्रयोग में लाने के लिए सभी आनुषंगिक और प्रासंगिक शक्तियां प्राप्त होंगी, जो ऐसे "प्रदान" को प्रभावी बनाने के लिए युक्तियुक्त रूप से आवश्यक हैं। उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का आशय यह है कि अधिकरण को, अभिव्यक्त रूप से प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय, सभी प्रासंगिक और आनुषंगिक शक्तियां प्राप्त होंगी। ये प्रासंगिक और आनुषंगिक शक्तियां निर्देशित वास्तविक विवाद से सम्बद्ध होनी चाहिए, न कि अन्तरिम अनुतोषों के, जो निर्देश की विषय-वस्तु ही नहीं हैं, प्रदान सहित किसी अन्य विषय से।

हमारी राय में, उच्चतम न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करने का आशय था कि अधिकरण को निर्देश की बाबत आदेश पारित करने के लिए प्रासंगिक और आनुषंगिक शक्तियां प्राप्त हैं, जिसके न्यायनिर्णयन के लिए वह गठित किया गया है। तथापि उसने आगे यह अधिकथित नहीं किया है (ऐसा ही लिखा है) कि उसे ऐसे विवाद की बाबत अनुतोष अनुदत्त करने की प्रासंगिक और आनुषंगिक शक्तियां भी प्राप्त हैं, जो निर्देशित ही नहीं किया गया है।

वर्तमान मामले में जल विवाद, जो हमें निर्देशित किया गया है, वह विवाद है, जो तमिलनाडु राज्य के तारीख 6 जुलाई, 1986 के पत्र से उद्भूत हुआ है।

अधिकरण को ऐसे सभी पारिणामिक आदेश पारित करने की शक्ति प्राप्त होगी, जिनका उक्त विवाद का विनिश्चय करते समय किया जाना आवश्यक है, और उसे ऐसी प्रासंगिक और आनुषंगिक शक्तियां भी प्राप्त होगीं। जो निर्देश के विनिश्चय को प्रभावी बनाएंगी किन्तु इन शक्तियों का प्रयोग केवल उसे निर्देश का प्रभावी रूप से विनिश्चय करने हेतु समर्थ बनाने के लिए ही किया जाएगा, न कि ऐसे विवादों का विनिश्चय करने के लिए जो निर्देशित ही नहीं किए गए हों, और जिनके अंतर्गत अन्तरिम अनुतोष/अन्तरिम अनुतोषों के मंजूर किए जाने से सम्बन्धित विवाद भी आता है।

× × ×

तमिलनाडु राज्य के विद्वान् काउन्सेल द्वारा इस आशय के दूसरे निवेदन के संबंध में कि केवल अधिकरण ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 262 के आधार पर जल विवाद की बाबत अधिकारिता का प्रयोग कर सकता था और यदि अधिकरण अन्यथा अभिनिर्धारित करता है तो तमिलनाडु राज्य को कोई उपचार उपलब्ध नहीं रह जाएगा, यह बता देना उचित होगा कि (चूंकि) हमने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि यदि वस्तुतः कोई जल विवाद उत्पन्न होता है और ऐसे जल विवाद का बातचीत द्वारा समाधान नहीं किया जा सकता है, तो केन्द्रीय सरकार को न्यायनिर्णयन हेतु उक्त विवाद अधिकरण को निर्देशित करने का अधिकार होगा; किसी दोष के लिए उपचार न होने का प्रश्न अधिकरण के समक्ष उत्पन्न नहीं होता है। केन्द्रीय सरकार यदि वह यह पाती है कि विवाद अधिकरण को पहले ही निर्देशित जल विवाद से सम्बद्ध है, तो उसके लिए अन्तरिम अनुतोष मंजूर किए जाने के संबंध में अधिकरण को उक्त विवाद भी निर्देशित करने की छूट है।"

18. उस मत को ध्यान में रखते हुए, जो उसने अपनाया, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह अन्तरिम अनुतोषों के मंजूर किए जाने के लिए उक्त आवेदन विचारार्थ ग्रहण नहीं कर सकता था, क्योंकि वे विधि की दृष्टि में चलने योग्य नहीं थे, और उसने उक्त आवेदन खारिज कर दिए।

19. इससे व्यथित होकर, तमिलनाडु राज्य ने अन्तरिम आदेश हेतु मूल आवेदन (1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 4) में तथा तुरन्त अन्तरिम अनुतोष के लिए आवेदन (1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 9) में पारित आदेशों के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष अनुमति (इजाजत) याचिकाओं के माध्यम से इस न्यायालय का अवलम्ब लिया। इसी प्रकार पाण्डिचेरी संघ राज्य क्षेत्र ने भी अन्तरिम अनुतोष हेतु उसके आवेदन में अधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध समावेदन फाइल किया (1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 5)। इन विशेष अनुमति (इजाजत) याचिकाओं की, जो बाद में क्रमशः 1991 की सिविल अपील सं० 303-04 और 1991 की सिविल अपील सं० 2036 के रूप में संपरिवर्तित कर दी गई, एक साथ सुनवाई की गई और उनका इस न्यायालय ने तारीख 26 अप्रैल, 1991 के अपने निर्णय द्वारा निपटारा कर दिया। अपीलें मंजूर करते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया—

"इस प्रकार हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यह न्यायालय अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 के उपबंधों का अन्तिम निर्वचनकर्ता है और उसे अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण की सीमाओं, शक्तियों और अधिकारिता का विनिश्चय करने का प्राधिकार प्राप्त है। इस न्यायालय को न केवल इस प्रश्न का विनिश्चय करने की शक्ति प्राप्त है बल्कि बाध्यता भी है कि क्या अधिकरण को किसी अन्तरिम आवेदन को विचारार्थ ग्रहण करने के लिए अधिनियम के अधीन कोई अधिकारिता प्राप्त है या नहीं, जब तक वह उसे निर्देशित विवाद का अन्तिम रूप से विनिश्चय नहीं कर देता है।

× × ×

तारीख 2 जून, 1990 के निर्देश के आदेश के परिशीलन से, जो पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है, स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि केन्द्रीय सरकार ने अन्तरराज्यिक नदी कावेरी और उसकी नदी घाटी से संबंधित जल-विवाद निर्देशित कर दिए थे, जो तमिलनाडु सरकार के तारीख 6 जुलाई, 1986 के पत्र से उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार तारीख 6 जुलाई, 1986 के पत्र से उत्पन्न होने वाले सभी विवाद अधिकरण को निर्देशित कर दिए गए थे। अधिकरण ने तारीख 6 जुलाई, 1986 के पूर्वोक्त पत्र में अन्तर्विष्ट निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण पैरा का परिशीलन न करके गम्भीर गलती की।"

उसके पश्चात् इस न्यायालय ने तारीख 6 जुलाई, 1986 के उक्त पत्र से उक्त पैरा उद्धृत किया, जो इस प्रकार है—

"अधिकरण को विवाद निर्देशित करने में सत्वर (त्वरित) कार्रवाई का अनुरोध—

1974-75 से और आगे, कर्नाटक सरकार अपने जलाशयों में (होने वाले) सभी प्रवाहों को परिबद्ध करती रही है। उनके जलाशय भर जाने के पश्चात् ही अधिशेष प्रवाह छोड़े जाते हैं। कर्नाटक की एकपक्षीय कार्रवाई के कारण पिछले दशक में इस राज्य को होने वाली क्षति (और हर समय कुछ टीएमसी जल के लिए भागने-फिरने के कारण होने वाली परेशानी और प्रायः समाप्त हो जाने वाली फसलों) का टिप्पण में संक्षिप्त विवरण किया गया है (संलग्नक—XXVIII)। यह स्पष्ट है कि कर्नाटक सरकार ने अन्तरराज्यिक करारों का घोर उल्लंघन किया है और इस राज्य में लम्बे समय से चली आ रही सिंचाई व्यवस्था को अपूरणीय हानि कारित की है। वर्ष प्रतिवर्ष, मेत्तूर में वसूली बहुत तेजी से गिर रही है और द्रोणी में हमारे क्षेत्र (आयाकट) में हजारों एकड़ भूमि परती भूमि बन कर रह गई है। तमिलनाडु में अधिकांशतः विद्यमान क्षेत्र (आयाकट) पर जो मुख्यतः तंजावूर और तिरुचिरापल्ली जिलों में संकेन्द्रित है, पहले ही गम्भीर रूप से प्रभावित हो चुका है क्योंकि खेती के कार्यों में लम्बा विलम्ब हो रहा है, पारम्परिक दोहरी फसल भूमियां एकल फसल भूमियां होती जा रही हैं और एकल फसल भूमियों में भी फसलें महत्त्वपूर्ण समयों पर पर्याप्त आर्द्रण (पानी) के अभाव में नष्ट और

समाप्त हो रही हैं। हमारा यह समाधान हो गया है कि विवाद का समाधान करने में असामान्य विलम्ब का कर्नाटक सरकार द्वारा फायदा उठाया जा रहा है क्योंकि उन्होंने अपनी नहर पद्धतियों में विस्तार कर लिया है और नई परियोजनाओं में अपने क्षेत्र (आयाकट) में भी वृद्धि कर ली है और विलम्ब के प्रत्येक दिन के साथ-साथ हमारी विद्यमान सिंचाई को होने वाली क्षति में भी वृद्धि हो रही है।"

20. उसके पश्चात् इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

"उपर्युक्त अंश से स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि तमिनाडु राज्य तुरन्त अनुतोष का दावा कर रहा था, क्योंकि वर्ष प्रतिवर्ष मेत्तूर की वसूली तेजी से गिर रही थी और द्रोणी में उनके क्षेत्र (आयाकट) की हजारों एकड़ भूमि परती भूमि बन कर रह गई थी। विनिर्दिष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया कि विवाद का समाधान करने में असामान्य विलम्ब का कर्नाटक सरकार द्वारा फायदा उठाया जा रहा है क्योंकि उन्होंने अपनी नहर पद्धतियों और नई परियोजनाओं में अपने क्षेत्र में विस्तार किया है और विलम्ब का प्रत्येक दिन उनकी विद्यमान सिंचाई को होने वाली क्षति में वृद्धि कर रहा है। इस प्रकार अधिकरण का यह अभिनिर्धारित करना स्पष्टतः गलत था कि केन्द्रीय सरकार ने कोई अन्तरिम अनुतोष मंजूर करने के लिए कोई निर्देश नहीं किया था। हमारा इस बात से सम्बन्ध नहीं है कि अपीलार्थी गुणागुण के आधार पर किसी अन्तरिम अनुतोष के लिए हकदार हैं या नहीं, किन्तु स्पष्टतः हमारा यह मत है कि अपीलार्थियों द्वारा 1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 4, 5 और 9 में ईप्सित अनुतोष स्पष्टतः अधिनियम की धारा 5 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्देशित विवाद की परिधि के अंतर्गत आते हैं। अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित नहीं किया है कि उसे अन्तरिम अनुतोष मंजूर करने के लिए कोई आनुषंगिक और प्रासंगिक शक्तियां प्राप्त नहीं हैं, बल्कि उसने इस आधार पर सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 4, 5 और 9 को विचारार्थ ग्रहण करने से इनकार कर दिया है कि इन आवेदनों में प्रार्थित अनुतोष केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्देशित नहीं किए गए थे। उपर्युक्त परिस्थितियों को देखते हुए, हम समझते हैं कि हमारे लिए इस मामले में इस बृहत्तर प्रश्न का विनिश्चय करना आवश्यक नहीं है कि क्या जल विवाद अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण को कोई अन्तरिम अनुतोष मंजूर करने के लिए शक्ति प्राप्त है या नहीं। वर्तमान मामले में अपीलार्थी हमारे द्वारा उनके पक्ष में अभिलिखित इस निष्कर्ष के आधार पर सफल रहने के लिए हकदार हैं कि 1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 4, 5 और 9 में उनके द्वारा प्रार्थित अनुतोष केन्द्रीय सरकार द्वारा किये गए निर्देश के अंतर्गत आते हैं। यहां यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि बहस की समाप्ति पर कर्नाटक राज्य की ओर से हमारे समक्ष यह निवेदन किया गया कि वह इस शर्त पर अधिकरण के समक्ष गुणागुण के आधार पर सिविल प्रकीर्ण याचिकाओं की बाबत आगे कार्यवाही करने के लिए सहमत है कि सभी पक्षकार राज्य इस बात पर सहमत हो जाएं कि जल-विवाद से उत्पन्न होने वाले या उससे सम्बद्ध या संगत सभी प्रश्न (संबंधित पक्षकारों के अभिवचनों में उपवर्णित), पक्षकार राज्यों द्वारा अन्तरिम निदेश/अनुतोष हेतु सभी आवेदनों सहित, अधिकरण द्वारा गुणागुण के आधार पर अवधारित

किए जाएं। तथापि, चूंकि तमिलनाडु राज्य को उपर्युक्त निबंधन स्वीकार्य नहीं थे, अतः हमने अपीलों का गुणागुण के आधार पर विनिश्चय किया है।"

21. उपर्युक्त निष्कर्षों को देखते हुए, इस न्यायालय ने उक्त आदेश द्वारा अधिकरण को 1990 की सिविल प्रकीर्ण याचिका सं० 4, 5 और 9 का गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करने के लिए निदेश किया। इन निदेशों के अनुसरण में, अधिकरण ने तमिलनाडु और पांडिचेरी के उक्त आवेदनों की सुनवाई की। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकरण के समक्ष कर्नाटक राज्य की ओर से, अंतरिम अनुतोष हेतु तमिलनाडु और पांडिचेरी द्वारा फाइल किए गए आवेदनों के चलने योग्य होने के संबंध में पुनः आक्षेप उठाए गए। अधिकरण ने उक्त आक्षेप स्वीकार नहीं किए और यह अभिनिर्धारित किया कि इस न्यायालय द्वारा दिया गया निदेश उसके लिए आबद्धकर था। उसके पश्चात् अधिकरण गुणागुण के आधार पर आवेदनों का विनिश्चय करने के लिए अग्रसर हुआ और तारीख 25 जून, 1991 के अपने आदेश द्वारा उसने यह अभिनिर्धारित किया—

"जब हम इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं कि क्या कोई आपातकालीन आदेश पारित किया जाना चाहिए, तब यथासंभव, अंतिम न्यायनिर्णयन के लंबित रहते, पक्षकारों के अधिकार परिरक्षित रखना और यह सुनिश्चित करना हमारी प्रधान विचारणा होनी चाहिए कि एक पक्षकार की एकपक्षीय कार्रवाई द्वारा अन्य पक्षकार पर अंतिम आदेश पारित किए जाने के समय समुचित अनुतोष प्राप्त करने के संबंध में प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। हमें पक्षकारों द्वारा ऐसे किसी कार्य के किए जाने को भी निवारित करने का प्रयास करना चाहिए, जिससे अधिकरण के मार्ग में इस अंतरराज्यिक नदी जल के ऋजु और साम्यापूर्ण वितरण के सिद्धांतों के अनुसार अंतिम आदेश पारित करने में बाधा पड़ सकती है।

× × × ×

...इस प्रक्रम पर यह अवधारित करना न तो साध्य होगा और न युक्तियुक्त ही कि अधिकतम संभव सीमा तक प्रत्येक राज्य की आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा किया जा सकता है, जिससे दूसरों को कम से कम हानि हो। इस प्रक्रम पर हम इस प्रश्न पर विचार करना भी उचित नहीं समझते हैं कि क्या तमिलनाडु राज्य द्वारा या कर्नाटक राज्य द्वारा कावेरी नदी के जल का वर्तमान उपयोग सर्वाधिक लाभप्रद उपयोग है, जो इस जल का किया जा सकता है।

× × × ×

...हमारा इस प्रक्रम पर इन जलाशयों, बांधों और नहरों आदि के निर्माण की वैधता या न्यायोचित्य पर विचार करने का इरादा नहीं है। उक्त मामलों में उस स्थिति में समुचित प्रक्रम पर विचार किया जा सकता है, यदि ऐसा करना आवश्यक पाया जाए। इस मामले में अव्यवहित भूतकाल में सामान्य वर्षों की संख्या के लिए उसका औसत निकाल कर मैत्तूर बांध में वार्षिक जल-निर्मोचन (पानी का छोड़ा जाना) नियत करना न्याय के अनुसार होगा।

× × × ×

"…हम पहले ही यह उल्लेख कर चूके हैं कि वर्तमान प्रक्रम पर हम सुविधा की विचारणा और विद्यमान उपयोग के बनाए रखने की विचारणा द्वारा अपना मार्गदर्शन करेंगे जिससे कि अंतिम न्यायनिर्णयन होने तक पक्षकारों के अधिकार परिरक्षित रखे जा सकें…।"

22. उसके पश्चात् अधिकरण ने कर्नाटक राज्य को अपने जलाशयों से कर्नाटक में जल छोड़ने का निदेश किया, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि जून से मई वाले वर्ष में तमिलनाडु के मेत्तूर जलाशय में 205 टी एम सी जल उपलब्ध रहता है। अधिकरण ने कर्नाटक को आदेश में वर्णित रीति में प्रतिवर्ष जल के छोड़े जाने को विनियमित करने का भी निदेश किया। कल का मासिक कोटा प्रति सप्ताह 4 किस्तों में छोड़ा जाना था और यदि किसी सप्ताह में पर्याप्त जल उपलब्ध नहीं था, तो पश्चात्वर्ती सप्ताह में कमी को पूरा किए जाने का निदेश किया गया। अधिकरण ने तमिलनाडु को नियमित रीति में उसके पांडिचेरी को कराईकल क्षेत्र के लिए 6 टी एम सी जल परिदत्त करने का भी निदेश किया। इसके अतिरिक्त अधिकरण ने कर्नाटक को विद्यमान 11.2 लाख एकड़ से अधिक, कावेरी जल द्वारा सिंचाई के अधीन अपने क्षेत्र को न बढ़ाने का भी निदेश किया। तत्पश्चात् अधिकरण ने यह कहा कि उसका उक्त आदेश, उसे निर्देशित विवाद के अंतिम न्यायनिर्णयन तक प्रभावी रहेगा।

23. तत्पश्चात्, तारीख 25 जुलाई, 1991 को कर्नाटक के राज्यपाल ने "कर्नाटक कावेरी द्रोणी सिंचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991" (दि कर्नाटक कावेरी बेसिन इरिगेशन प्रोटेक्शन आर्डीनेंस, 1991) नामक एक अध्यादेश जारी किया, जो इस प्रकार है—

"कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के जलों पर निर्भर कर्नाटक में कावेरी द्रोणी के सिंचाई योग्य क्षेत्रों में सिंचाई के संरक्षण और परिरक्षण का, जनसाधारण के हित में, उपबंध करने के लिए अध्यादेश।

अतः कर्नाटक विधान परिषद का सत्र नहीं चल रहा है और कर्नाटक के राज्यपाल का यह समाधान हो गया है कि ऐसी परिस्थितियां अस्तित्व में हैं, जिनके कारण उनके लिए कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के जल पर निर्भर कर्नाटक में कावेरी द्रोणी के सिंचाई योग्य क्षेत्रों में सिंचाई के संरक्षण और परिरक्षण के लिए कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है।

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"An Ordinance to provide the interest of the general public for the protection and preservation of irrigation in irrigable areas of the Cauvery basin in Karnataka dependent on the waters of the Cauvery river and its tributaries.

Whereas the Karnataka Legislative Council is not in Session and the Governor of Karnataka is satisfied that circumstances exist which render it necessary for him to take immediate action, for the protection and preservation of irrigation in the irrigable areas of the Cauvery basin in Karnataka dependant on the water of Cauvery river and its tributaries.

अत: अब भारत के संविधान के अनुच्छेद 213 के खण्ड (1) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, मैं, खुर्शीद आलम खां, कर्नाटक का राज्यपाल, निम्नलिखित अध्यादेश प्रख्यापित करता हूं, अर्थात्—

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ—

(1) इस अध्यादेश का नाम "कर्नाटक कावेरी द्रोणी सिचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991" है।

(2) इस अध्यादेश का विस्तार संपूर्ण कर्नाटक राज्य पर होगा।

(3) यह तुरंत प्रवृत्त होगा।

2. परिभाषा : जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो—

(क) "कावेरी द्रोणी" से कर्नाटक राज्य क्षेत्र के अन्दर स्थित कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों का द्रोणी क्षेत्र अभिप्रेत है।

(ख) "सिचाई योग्य क्षेत्र", से अनुसूची में विनिर्दिष्ट क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(ग) "अनुसूची" से इस अध्यादेश से उपाबद्ध अनुसूची अभिप्रेत है।

(घ) "जल वर्ष" से कलैण्डर वर्ष के जून मास की प्रथम तारीख से आरंभ होने वाला और अगले कलैंडर वर्ष के मई मास की 31 तारीख को समाप्त होने वाला वर्ष अभिप्रेत है।

Now, therefore, in exercise of the power conferred under clause (1) of Article 213 of Constitution of India, I, Khurshed Alam Khan, Governor of Karnataka, am pleased to promulgate the following Ordinance, namely :—

1. Short title, extent and commencement :—

(1) This Ordinance may be called the Karnataka Cauvery Basin Irrigation Protection Ordinance, 1991.

(2) It extends to the whole of the State of Karnataka.

(3) It shall come into force at once.

2. Definition : Unless the context otherwise requires :

(a) "Cauvery basin" means the basin area of the Cauvery river and its tributatries lying within the territory of the State of Karnataka.

(b) "Irrigable area" means the areas specified in the Schedule.

(c) "Schedule" means the Schedule annexed to this Ordinance.

(d) "Water year" means the year commencing with the 1st of June of a Calender year and ending with the 31st of May of the next Calender year.

3. सिंचाई योग्य क्षेत्र में सिंचाई का संरक्षण—

(1) यह राज्य सरकार का कर्तव्य होगा कि वह अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न परियोजनाओं के अधीन सिंचाई योग्य क्षेत्र में कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के जलों से सिंचाई का संरक्षण, परिरक्षण और अनुरक्षण करे।

(2) उपधारा (1) को प्रभावी बनाने के प्रयोजन के लिए, राज्य सरकार प्रत्येक जल वर्ष के दौरान, कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के प्रवाह से ऐसी रीति में और ऐसे अंतरालों के दौरान, जिन्हें राज्य सरकार या उसके द्वारा पदाभिहित, मुख्य इंजीनियर की पंक्ति से अन्यून पंक्ति का कोई अधिकारी ठीक और उचित समझे, इतनी मात्रा में जल निकाल सकेगी या निकलवा सकेगी, जितनी वह पर्याप्त समझे।

4. अध्यादेश का अध्यारोही प्रभाव—

इस अध्यादेश के और तदधीन (बनाए गए किन्हीं भी नियमों और आदेशों के) उपबंध, अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 6 के साथ पठित, धारा 5 की उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन अंतिम विनिश्चय के सिवाय किसी आदेश, रिपोर्ट या किसी न्यायालय या अधिकरण के विनिश्चय में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे (चाहे वे इस अध्यादेश के प्रारंभ से पूर्व किए गए हों या उसके पश्चात्)

---

3. Protection of Irrigation in irrigable area :

(1) It shall be the duty of the State Government to protect, preserve and maintain irrigation from the waters of the Cauvery river and its tributaries in the irrigable area under the various projects specified in the Schedule.

(2) For the purpose of giving effect to sub-section (1) the State Government may abstract or cause to be abstracted, during every water year, such quantity of water as it may deem requisite from the flows of the Cauvery river and its tributaries, in such manner and during such intervals as the State Government or any Officer, not below the rank of an Engineer-in-Chief designated by it, may deem fit and proper.

4. Overriding effect of the Ordinance—

The provisions of this Ordinance, (and of any Rules and Orders made thereunder) shall have effect notwithstanding anything contained in any order, report or decision of any Court or Tribunal (whether made before or after the commencement of this Ordinance), save and except a final decision under the provisions of sub-section (2), section 5 read with section 6 of the Inter-State Water Disputes Act, 1956.

5. कठिनाइयां दूर करने की शक्ति—

यदि इस अध्यादेश के उपबंधों को प्रभावी बनाने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है, तो राज्य सरकार, आदेश द्वारा, अवसर की अपेक्षा के अनुसार ऐसी कोई भी चीज (इस अध्यादेश के उपबंधों से संगत) कर सकती है, जो कठिनाई को दूर करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हो।

6. नियम बनाने की शक्ति—

(1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अध्यादेश के प्रयोजन को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी।

(2) इस अध्यादेश के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, उसके बनाए जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा जब वह कुल मिलाकर 30 दिन की अवधि के लिए सत्र में हो, जो एक सत्र में या दो या अधिक सत्रों में समाविष्ट हो सकेगी और यदि उक्त अवधि के अवसान से पूर्व, राज्य विधानमंडल का कोई भी सदन किसी नियम या आदेश में कोई उपांतरण करता है या यह निदेश करता है कि कोई नियम या आदेश प्रभावी नहीं होगा और यदि ऐसे उपांतरण या निदेश पर अन्य सदन द्वारा सहमति व्यक्त की जाती है, तो ऐसा नियम या आदेश उसके पश्चात् यथास्थिति, केवल ऐसे उपांतरित रूप में ही प्रभावी होगा या प्रभावी होगा ही नहीं।"

24. अधिसूचना में वर्णित अनुसूची में लघु सिंचाई संकर्मों सहित, विभिन्न परियोजनाओं के अधीन कर्नाटक की कावेरी द्रोणी में सिंचाई-योग्य क्षेत्रों के प्रति निर्देश किया गया है।

---

5. Power to remove difficulties :—

If any difficulty arises in giving effect to the provisions of this Ordinance, the State Government may, by order, as occasion requires, do anything (not inconsistent with the provisions of this Ordinance) which appears to be necessary purpose of removing the difficulty.

6. Power to make rules :—

(1) The State Government may, by Notification in the Official Gazette make rules to carry out the purpose of this Ordinance.

(2) Every rule made under this Ordinance shall be laid as may be after it is made, before each House of the State Legislative while it is in Session for a total period of thirty days which may be comprised in one Session or in two or more Sessions and if before the expiry of the said period, either House of the State Legislature makes any modification in any rule or order directs that any rule or order shall not have effect, and if the modification or direction is agreed to by the other House, such rule order shall thereafter have effect only in such modified form or be no effect, as the case may be."

25. इस अध्यादेश के प्रख्यापित किए जाने के तुरंत पश्चात्, कर्नाटक राज्य ने इस घोषणा के लिए तमिलनाडु राज्य और अन्यों के विरुद्ध अनुच्छेद 131 के अधीन एक वाद संस्थित किया कि अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने वाला अधिकरण का आदेश अधिकारिता-रहित था और इसलिए अकृत और शून्य आदि था।

26. एक अन्य घटना, जिसकी अवेक्षा करना उचित होगा, यह है कि अब उक्त अध्यादेश का स्थान 1991 के अधिनियम सं० 27 द्वारा ले लिया गया है। अधिनियम के उपबंध अध्यादेश के उपबंधों के शब्दशः उद्धरण हैं, सिवाय इसके कि अधिनियम की धारा 4 में "कोई न्यायालय या" शब्दों का लोप कर दिया गया है और अध्यादेश का निरसन करते हुए, धारा 7 जोड़ दी गई है। उपर्युक्त शब्दों के लोप द्वारा इस न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के आदेश को उक्त उपबंध के अध्यारोही प्रभाव से अपवर्जित कर दिया गया है। इसके पश्चात् अध्यादेश के प्रति निर्देश में अधिनियम के प्रति निर्देश भी सम्मिलित होगा, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो।

27. इन्हीं घटनाओं के संदर्भ में राष्ट्रपति ने निर्देश किया है, जो आरंभ में ही उपवर्णित किया जा चुका है।

28. हमारे समक्ष एक ओर तमिलनाडु राज्य और पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र पक्षकार के रूप में है, जब कि दूसरी ओर कर्नाटक और केरल राज्य हैं। भारत संघ ने निर्देश से उत्पन्न होने वाले विवाद्यकों के संबंध में किसी का भी पक्ष नहीं लिया है। दोनों ओर से मध्यक्षेपी भी हैं। पक्षकारों की दलीलें इसके पश्चात् संक्षेप में दी गई हैं। दलीलों में दोनों ओर से यह अभिवाक् भी सम्मिलित है कि भिन्न-भिन्न कारणों से निर्देश में उठाए गए सभी या एक या किसी अन्य प्रश्न का उत्तर न दिया जाए। इन अभिवाकों पर भी समुचित स्थानों पर विचार किया जाएगा। दलीलों पर विचार करने से पूर्व, निर्देश की कुछ विशेष बातों का उल्लेख करना आवश्यक है, जिनके प्रति पक्षकारों की दलीलों में भी निर्देश किया गया है। निर्देश, इस न्यायालय की, उसकी परामर्श-अधिकारिता के अधीन, राय की ईप्सा करते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 143(1) के अधीन किया गया है। जैसा कि निर्देश की उद्देशिका में कहा गया है, और उसका हमारे समक्ष खंडन भी नहीं किया गया है, प्रथम दो प्रश्न स्पष्टतः एक ओर तमिलनाडु राज्य और पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र तथा दूसरी ओर कर्नाटक और केरल राज्यों के बीच जल के बंटवारे से संबंधित विवाद का परिणाम हैं, तथा उक्त विवाद में घटनाएं निर्देश की तारीख तक घटित हुईं। जैसी कि तमिलनाडु और पांडिचेरी की ओर से दलील दी गई है, तृतीय प्रश्न का भी विवाद और उक्त घटनाओं से संबंध है, और वह प्रकृति में सामान्य नहीं है यद्यपि उसे सामान्य शब्दों में व्यक्त किया गया है। उनके अनुसार, उक्त प्रश्न इस न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के निर्णय और तारीख 25 जून, 1991 के अधिकरण के पारिणामिक आदेश को निष्प्रभाव करने के कुटिल हेतु से रखा गया है। अतः उक्त प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जाना चाहिए। उनकी अन्य दलील यह है कि यदि प्रश्न प्रकृति में सामान्य है, तो उसका उत्तर दिया जाना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है।

29. अब निर्देशित प्रश्नों पर पक्षकारों की दलीलों का संक्षिप्त वर्णन करना उचित होगा।

30 प्रश्न सं० 1 के संबंध में कर्नाटक राज्य ने सांविधानिक विधिमान्यता की उपधारणा के प्रकाश में, जो सामान्यतया किसी विधान से संलग्न होती है, यह दलील दी है कि उसे चुनौती देने वाले पक्षकार पर यह दर्शित करने का गुरुतर भार रहता है कि आक्षेपित अध्यादेश (अब अधिनियम) संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य है। आक्षेपित विधान स्पष्टत: संविधान की 7वीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 17 और प्रविष्टि 14 तथा 18 के अधीन राज्य विधानमंडल की सक्षमता के अन्तर्गत आता है। जल, अर्थात् जल प्रदाय, सिंचाई और नहरें, जल निकास और तटबंध, जल भंडारकरण और जल शक्ति, सूची 2 की प्रविष्टि 17 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रविष्टि 17' कहा गया है) के अंतर्गत आते हैं और राज्य विधानमंडल को उक्त विषय पर विधान बनाने का प्रत्येक अधिकार प्राप्त है और यह विधायी शक्ति केवल सूची 1 की प्रविष्टि 56 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रविष्टि 56' कहा गया है) के ही अधीन है। उक्त प्रविष्टि अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के उस सीमा तक विनियमन और विकास के संबंध में है, जिस तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसा विनियमन और विकास संसद् द्वारा लोक हित में विधि द्वारा समीचीन घोषित किया जाए। यह दलील दी गई है कि यह प्रविष्टि राज्यों को प्रविष्टि 17 के अधीन विधान बनाने की शक्ति से निर्निहित (वंचित) नहीं करती है, क्योंकि उसके द्वारा संघ को, यदि संसद् ने उसे विधि द्वारा लोक हित में घोषित किया है, इस बात के लिए सशक्त किया है कि अंतरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास घोषणा द्वारा अनुज्ञेय सीमा तक संघ के नियंत्रण के अधीन होना चाहिए। उक्त प्रविष्टि के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट है कि घोषणा के अधीन रहते हुए, अंतरराज्यिक नदी के विनियमन और विकास को छोड़ कर, केन्द्रीय सरकार को जल आदि पर विधान बनाने की शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है, जो राज्य विधानमंडलों के अनन्य क्षेत्र के अंतर्गत है। चूंकि नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 प्रविष्टि 56 के अधीन संसद् द्वारा बनाया गया एकमात्र विधान है, और उसकी धारा 2 में घोषणा की परिधि इसमें इसके पश्चात् उपबंधित सीमा तक, अर्थात् उक्त कानून द्वारा उपबंधित सीमा तक, सीमित की गई है और चूंकि उक्त विधि के अधीन अन्तरराज्यिक नदी की बाबत अभी तक कोई नदी बोर्ड गठित नहीं किया गया है, अतः प्रविष्टि 17 के अधीन विधान बनाने की शक्ति में कोई काट-छांट नहीं की गई है या उसे निर्बन्धित नहीं किया गया है। इस प्रकार कर्नाटक राज्य ने यह दलील दी है कि नदी बोर्ड अधिनियम द्वारा किसी भी रीति में प्रविष्टि 17 के अधीन विधायी शक्ति को निर्बन्धित या नियंत्रित किए बिना केवल संघ को अंतरराज्यिक नदियों के विनियमन और विकास को अपने नियंत्रण में रखने के उद्देश्य से नदी-बोर्ड स्थापित करने के लिए ही प्राधिकृत किया गया है। किंतु कावेरी के लिए नदी-बोर्ड के गठन के अभाव में, यह दलील दी गई है, कर्नाटक राज्य विधियां बनाने की पूर्ण विधायी शक्ति अब भी प्रतिधारित किए हुए है, मानो प्रविष्टि 17 में कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 73 के अधीन संघ की कार्यपालक शक्ति ऐसे विषयों की बाबत किसी राज्य को विस्तारित नहीं की जा सकती है, जिन पर इस तथ्य को देखते हुए कि उक्त क्षेत्र संविधान के अनुच्छेद 162 के अंतर्गत आता है, एकमात्र राज्य ही विधान बना सकता है। चूंकि संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन अधिनियमित अधिनियम सूची 1 की किसी प्रविष्टि को लागू नहीं होता है, अतः वह किसी अंतरराज्यिक नदी या नदी घाटी के या उसमें जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत विवाद के न्यायनिर्णयन का उपबंध करने के लिए अनिवार्यतः अभिप्रेत

1991(11) eILR(PAT) SC 16

विधि है और इसलिए वह प्रविष्टि 17 के अनुसार कार्य नहीं करती है। अध्यादेश (अब अधिनियम) में यह ईप्सित है कि धारा 3 द्वारा राज्य सरकार पर उक्त विधान की अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत आने वाले सिंचाई क्षेत्रों में कावेरी जलों से सिंचाई को संरक्षण, परिरक्षण और अनुरक्षण करने का कर्तव्य अधिरोपित किया गया है। अतः कर्नाटक राज्य ने यह दलील दी है कि आक्षेपित विधान स्पष्टतः राज्य की विधान बनाने की शक्ति की परिधि के अंतर्गत है और इसलिए वह संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अंतर्गत है। सुतराम, सूची 2 की प्रविष्टि 14, 17 और 18 द्वारा राज्य विधानमंडल को प्रदत्त, विधान बनाने की शक्ति अधिकरण के अंतरिम आदेश द्वारा निषिद्ध नहीं की जा सकती है, क्योंकि अधिनियम की स्कीम में केवल धारा 5(2) के अधीन अधिकरण की एक अंतिम रिपोर्ट या विनिश्चय ही परिकल्पित किया गया है, जिसे उसकी धारा 6 के अधीन राजपत्रित किया जाना होगा। जब तक कि अन्तरराज्यिक नदी के जलों में संबंधित राज्यों के अंशों को अवधारित करते हुए, अधिकरण द्वारा कोई अंतिम न्यायनिर्णयन नहीं किया जाता है, तब तक राज्य, राज्य के अन्दर जल का अधिकतम उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होंगे और अधिकरण अंतरिम आदेश की आड़ में ऐसे उपयोग में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। परिणामतः, कर्नाटक विधानमंडल को अधिकरण के अन्तरिम आदेश की उपेक्षा करते हुए या उस पर अभिभावी होते हुए विधि बनाने का अधिकार प्राप्त था।

31. निर्देश के प्रश्न सं० 2 (i) के संबंध में, कर्नाटक राज्य ने यह दलील दी है कि अधिनियम की स्कीम में अधिकरण द्वारा अन्तरिम आदेश का पारित किया जाना अनुध्यात नहीं किया गया है। अधिनियम की धारा 5 में यह उपबंध किया गया है कि धारा 4 के अधीन अधिकरण के गठित किए जाने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार जल विवाद या जल विवाद से संबद्ध या संगत प्रतीत होने वाला कोई भी मामला न्यायनिर्णयन हेतु अधिकरण को निर्देशित करेगी। ऐसे निर्देश पर अधिकरण को उसे निर्देशित मामलों का अन्वेषण करना चाहिए और उसके द्वारा पाए गए तथ्यों को उपवर्णित करते हुए और उसे निर्देशित मामलों पर अपना विनिश्चय देते हुए, रिपोर्ट अग्रेषित करनी चाहिए। यदि विनिश्चय पर विचार करने पर केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार की यह राय है कि उसमें अन्तर्विष्ट कोई चीज स्पष्टीकरण की अपेक्षा करती है या ऐसे किसी मुद्दे पर मार्गदर्शन की आवश्यकता है, जो मूलतः अधिकरण को निर्देशित नहीं किया गया है, तो ऐसी सरकार विनिश्चय से तीन मास के अन्दर, और आगे विचार हेतु मामला पुनः निर्देशित कर सकेगी और ऐसे निर्देश पर अधिकरण ऐसा स्पष्टीकरण और मार्गदर्शन प्रदान करते हुए, अतिरिक्त रिपोर्ट अग्रेषित करेगा, जैसा कि वह ठीक समझे, और तदुपरि अधिकरण का विनिश्चय तदनुसार उपांतरित किया गया समझा जाएगा। उसके पश्चात् धारा 6 द्वारा केन्द्रीय सरकार को अधिकरण के विनिश्चय को राजपत्र में प्रकाशित करने का व्यादेश किया गया है और ऐसे प्रकाशन पर विनिश्चय अंतिम और विवाद के पक्षकारों के लिए आबद्धकर होगा तथा उसे उनके द्वारा प्रभावी बनाया जाएगा। कर्नाटक राज्य की ओर से यह दलील दी गई है कि पूर्वोक्त उपबंधों की स्कीम में स्पष्टतः यह परिकल्पित किया गया है कि जब एक बार जल विवाद अधिकरण को निर्देशित कर दिया जाता है, तब अधिकरण को उसे निर्देशित मामलों का अन्वेषण करना चाहिए और उसके द्वारा पाए गए तथ्यों को उपवर्णित करते हुए और उसे निर्देशित मामलों पर अपना विनिश्चय देते हुए, केन्द्रीय सरकार को रिपोर्ट अग्रेषित करनी

चाहिए। केंद्रीय सरकार को यह विनिश्चय राजपत्र में प्रकाशित करना चाहिए, जिससे कि वह विवाद के पक्षकारों के लिए आबद्धकर और अंतिम बनाया जा सके। अतः कर्नाटक राज्य ने यह दलील दी है कि अधिनियम की स्कीम में पूर्ण अन्वेषण के पश्चात् की जाने वाली केवल अन्तिम रिपोर्ट ही अनुध्यात की गई है, जिसमें न्यायनिर्णयन हेतु उसे निर्देशित मामलों पर अधिकरण के विनिश्चय सहित, तथ्य के निष्कर्ष उपवर्णित किए जाएंगे और उसमें आधी-अधूरी जानकारी पर आधारित अंतरिम रिपोर्ट अनुध्यात नहीं की गई है। अंतिमतः उक्त रिपोर्ट से संलग्न होती है, जिसमें अन्वेषण पर आधारित तथ्य के निष्कर्ष अभिलिखित होते हैं, न कि किसी अन्वेषण पर अनाधारित या सरसरी अन्वेषण पर आधारित तदर्थ, अस्थायी और प्रथमदृष्ट्या मत पर। अतः कर्नाटक राज्य ने यह दलील दी है कि (चूंकि) अंतरिम आदेश से पहले अधिनियम द्वारा अनुध्यात प्रकार का अन्वेषण नहीं किया गया था, अतः तारीख 25 जून, 1991 का उक्त आदेश अधिनियम की धारा 5(2) के अधीन रिपोर्ट या विनिश्चय के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता था और इसलिए उसे राजपत्र में प्रकाशित करने का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं हो सकता था। अतः यह दलील दी गई है कि ऐसे आदेश से कोई अन्तिमतः संलग्न नहीं हो सकती है, जो न तो रिपोर्ट है और न विनिश्चय ही, और यदि उसे राजपत्र में प्रकाशित किया भी जाता है, तब भी वह विवाद के पक्षकारों के लिए आबद्धकर नहीं हो सकता है और विधि की दृष्टि में उसकी कोई प्रभावकारिता नहीं हो सकती है, अतः प्रश्न सं० 2(ii) के संबंध में यह दलील दी गई है कि (चूंकि) कोई अन्वेषण नहीं किया गया था, तथ्यों पर कोई निष्कर्ष नहीं दिए गए थे, और न कोई रिपोर्ट या विनिश्चय ही दिया गया था, अतः केन्द्रीय सरकार अधिकरण के अंतरिम आदेश को प्रकाशित करने के लिए किसी बाध्यता के अधीन नहीं है।

32. प्रश्न सं० 3 के संबंध में, कर्नाटक राज्य ने पुनः इस तथ्य पर जोर दिया है कि अधिनियम की स्कीम में स्पष्टतः अन्वेषण के समापन पर और अधिकरण द्वारा मुकदमा लड़ने वाले पक्षकारों द्वारा उसके समक्ष उठाए गए तथ्य के विवादग्रस्त प्रश्नों पर दृढ़ निष्कर्ष निकाले जाने के पश्चात्, अधिकरण द्वारा अन्तिम रिपोर्ट का दिया जाना परिकल्पित किया गया है। उसके पश्चात् ही वह अपनी रिपोर्ट में विनिश्चय को अभिलिखित कर सकता है, जो राजपत्रित किए जाने पर अन्तिम और पक्षकारों के लिए आबद्धकर हो जाता है। अधिनियम की धारा 5(1) में प्रयुक्त 'जल विवाद से सम्बद्ध या संगत प्रतीत होने वाला कोई मामला' शब्दों में अन्तरिम अनुतोष के मामले का निर्देश अनुध्यात नहीं किया गया है और न उसके द्वारा अधिकरण को वाद के लम्बित रहते अन्तरिम आदेश पारित करने के लिए सशक्त ही किया गया है। अधिनियम द्वारा अधिकरण को अन्तरिम आदेश करने के लिए जानबूझकर शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है और उसका सीधा-सादा कारण यह है कि जल विवाद के अनेक पहलू हैं, जैसे कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलू, तथा उसमें जल के साम्यापूर्ण वितरण के प्रश्न अन्तर्वलित हैं, जो सांख्यिकीय जानकारी सहित, सुसंगत आधार सामग्री के पूर्ण अन्वेषण के बिना अवधारित नहीं किए जा सकते हैं। अतः जैसी कि वस्तुस्थिति है, उसे देखते हुए, यह समझना असंभव है कि अधिनियम में अन्तरिम आदेश का पारित किया जाना परिकल्पित किया गया है। यह स्वीकार करते हुए भी कि कुछ प्रकार के अन्तर्वर्ती आदेश, जो प्रकृति में प्रक्रियात्मक हैं, अधिकरण द्वारा अधिनियम के प्रयोजन, अर्थात् जल विवाद के न्यायनिर्णयन, को प्रभावी बनाने के लिए अधिकरण द्वारा

किए जा सकते हैं, ऐसा कोई अन्तरिम अनुतोष या आदेश नहीं किया जा सकता है, जो पक्षकारों के विद्यमान अधिकारों को प्रभावित करेगा, क्योंकि वस्तुतः उससे संबंधित राज्य प्रविष्टि 17 के अधीन जल की बाबत विधान बनाने की शक्ति और/या संविधान के अनुच्छेद 162 के अधीन उस निमित्त कार्यपालक आदेश पारित करने की शक्ति से वंचित हो जाएगा। अधिनियम के अधीन अधिकरण को जल विवाद का न्यायनिर्णयन करने के लिए प्रदत्त अधिकारिता अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की सीमा तक विस्तारित नहीं होती है। अतः कर्नाटक राज्य ने यह दलील दी है कि अधिनियम के प्रयोजन, परिधि और आशय को देखते हुए, तदधीन गठित अधिकरण को ऐसा कोई अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए कोई शक्ति या प्राधिकार प्रदत्त नहीं किया गया है, जिसका प्रभाव उसके विद्यमान अधिकारों में प्रतिकूल रूप से हस्तक्षेप करने का होगा, यद्यपि विवाद का अन्तिम रूप से न्यायनिर्णयन करते समय, वह राज्य द्वारा की गई किसी कार्यपालक या विधायी कार्रवाई पर अध्यारोही प्रभाव वाला आदेश कर सकता है। चूंकि संबंधित राज्यों के बीच जल प्रवाह का प्रभाजन सामान्यतया साम्यापूर्ण प्रभाजन के सिद्धांत पर आधारित होता है, अतः अधिकरण के लिए यह आवश्यक है कि वह तथ्यों का अन्वेषण करे और संबंधित राज्यों के अंशों पर विनिश्चय करने से पूर्व सभी सुसंगत सामग्री का भी अन्वेषण करे, जो अन्तरिम प्रक्रम पर संभव नहीं है और इसलिए विधानमण्डल ने उचित ही अधिकरण को संबंधित पक्षकारों के विद्यमान अधिकारों को प्रभावित करने वाला अन्तरिम आदेश पारित करने की कोई शक्ति प्रदत्त नहीं की है। अतः कर्नाटक राज्य ने यह दलील दी है कि इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया जाना चाहिए।

33. केरल राज्य ने तारीख 10 अगस्त, 1991 के अपने लिखित निवेदनों में कुल मिला कर कर्नाटक राज्य द्वारा अपनाए गए आधार का समर्थन किया है। उसने यह दलील दी है कि संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन अधिनियमित अधिनियम के उपबंध एक पूर्ण संहिता गठित करते हैं और अधिकरण को केवल अधिनियम की धारा 9(1) में प्रगणित विषयों की बाबत ही सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन सिविल न्यायालय की शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की शक्ति सुदृष्ट रूप में अनुपस्थित है और इस निमित्त किसी अभिव्यक्त उपबंध के अभाव में अधिकरण को, जो अधिनियम की सृष्टि है, अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं हो सकती है। इस स्थल पर केरल राज्य की दलील का स्वयं उसके ही शब्दों में उल्लेख करना उपयोगी होगा—

> "……अधिकरण को कोई अन्तरिम अधिनिर्णय करने या पक्षकार को अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की कोई अधिकारिता या शक्ति प्राप्त नहीं है, जब तक कि अन्तरिम अनुतोष से संबंधित विवाद स्वयं अधिकरण को निर्देशित नहीं किया गया हो।" (पैरा 1.5)

अपने निवेदनों के पैरा 3.3 में केरल राज्य ने उक्त दलील को इस प्रकार विस्तृत किया है—

> ऐसा अनुतोष किसी पक्षकार को उस स्थिति में अनुदत्त किया जा सकता है यदि वह केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिकरण को पृथक् निर्देश की विषय-वस्तु हो।

ऐसी स्थिति में, अधिकरण का आदेश अधिनियम की धारा 5(2) के अंतर्गत पृथक् रिपोर्ट और विनिश्चय गठित करेगा, जिसे उसके पश्चात् केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित किया जाएगा और इसलिए वह पक्षकारों के लिए आबद्धकर होगा।"

तथापि, केरल राज्य ने यह आधार लिया है कि अधिकरण को अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त किए जाने के लिए कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं किया गया था और इसलिए तारीख 25 जून, 1991 को अन्तरिम आदेश धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय गठित नहीं करता और इसलिए केन्द्रीय सरकार से उसे राजपत्रित करने की आशा नहीं की जाती है। जब तक उसे राजपत्र में प्रकाशित नहीं किया जाता है, तब तक उससे अन्तिमता संलग्न नहीं हो सकती है और न वह पक्षकारों के लिए आबद्धकर ही हो सकता है। अत: केरल राज्य ने यह दलील दी है कि अधिकरण को अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं है, जो उसने अपने पूर्वोक्त अन्तरिम आदेश द्वारा अनुदत्त किया है। अत: उक्त आदेश की विधि की दृष्टि में कोई प्रभावकारिता नहीं है और उसकी उपेक्षा की जा सकती है।

34. अध्यादेश के जारी किए जाने के प्रश्न के संबंध में, केरल राज्य ने यह दलील दी है कि ऐसा विधान प्रविष्टि सं० 17 की परिधि के अन्तर्गत आता है और इसलिए वह पूर्णत: वैध और संवैधानिक है तथा किसी भी रीति में प्रविष्टि 56 से असंगत नहीं है और न उससे नदी बोर्ड अधिनियम की धारा 2 में घोषणा के किसी भाग या उसके किसी उपबंध का उल्लंघन ही होता है। इस प्रकार केरल राज्य के अनुसार, ऐसा कानून पारित करने की विधायी सक्षमता प्रविष्टि सं० 17 के अधीन राज्य विधानमण्डल में निहित है और इसलिए कर्नाटक के राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन अध्यादेश जारी करने के लिए सक्षम थे।

35. किन्तु इस न्यायालय के समक्ष अपने निवेदनों के दौरान केरल राज्य के विद्वान् काउंसेल, श्री शांति भूषण ने लिखित निवेदनों में अपनाए गए आधार से विचलन किया और यह दलील दी कि अधिनियम की स्कीम द्वारा अधिकरण को अन्तरिम आदेश पारित करने की कोई शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है और इसलिए राज्य को, जिसे उच्चतर (ऊपरी) तटवर्ती राज्य द्वारा किसी कार्रवाई की आशंका है, जिससे उसके अधिकार, अर्थात् उसके लोगों के अधिकार, प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने की संभावना है, एकमात्र उपलब्ध उपचार, अनुच्छेद 262 और अधिनियम की धारा 11 के उपबंधों के होते हुए भी संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन उच्चतम न्यायालय में समावेदन करना है। विद्वान् काउंसेल के अनुसार, चूंकि अधिनियम की स्कीम के साथ पठित, अनुच्छेद 262 की परिधि में अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण को अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त किए जाने के संबंध में निर्देश अनुध्यात नहीं किया गया है, अत: संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन वाद संस्थित किए जाने का मार्ग खुला हुआ है। श्री शांति भूषण ने और आगे जाकर यह दलील भी दी कि यदि अधिनियम द्वारा केन्द्रीय सरकार में शक्ति निहित की भी गई होती, तब भी ऐसे उपबंध से स्वयं अनुच्छेद 262 का उल्लंघन होता क्योंकि उक्त अनुच्छेद की परिधि सीमित है, जब कि अनुच्छेद 131 की परिधि काफी व्यापक है। इस प्रकार विद्वान् काउंसेल के अनुसार, इस न्यायालय के अधिकांश न्यायाधीशों का मत, जो 1991 की सिविल अपील सं० 303, 304

और 2036 में न्या० कासलीवाल द्वारा व्यक्त किया गया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त किए जाने के लिए अधिकरण को निर्देश किया गया था, अनुच्छेद 262 और अधिनियम के उपबंधों के सही अर्थ और परिधि से संगत नहीं है, और इस न्यायालय को स्वयं को उससे आबद्ध महसूस नहीं करना चाहिए, यदि वह विद्वान् काउंसेल के निर्वचन से सहमत हो, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ राष्ट्रपति को गलत सलाह देना होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विद्वान् काउंसेल के निवेदन तारीख 10 अगस्त, 1991 को राज्य द्वारा फाइल किए गए लिखित निवेदनों से स्पष्ट विचलन हैं।

36. तमिलनाडु राज्य ने यह दलील दी है कि सामान्यतया (i) भारत सरकार और एक या अधिक राज्यों के बीच या (ii) एक ओर भारत सरकार और किसी राज्य या राज्यों और दूसरी ओर एक या अधिक राज्यों के बीच, या (iii) दो या अधिक राज्यों के बीच विवाद को संविधान का अनुच्छेद 131 लागू होगा और, संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केवल उच्चतम न्यायालय को ही अधिकारिता प्राप्त होगी, यदि और जहां तक विवाद में ऐसा कोई प्रश्न अन्तर्वलित है (चाहे वह विधि का हो या तथ्य का), जिस पर विधिक अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर करता है। अनुच्छेद 131 'संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए', शब्दों से आरम्भ होता है और इसलिए उसे संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन रहते हुए पढ़ा और समझा जाना चाहिए। अनुच्छेद 262 द्वारा संसद को किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटी के या उसमें जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत किसी विवाद या परिवाद के न्यायनिर्णयन का विधि द्वारा उपबंध करने के लिए समर्थ बनाया गया है। संविधान में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, उक्त विधि द्वारा यह उपबंध किया जा सकेगा कि न तो उच्चतम न्यायालय और न कोई अन्य न्यायालय ही ऐसे किसी विवाद या परिवाद की बाबत अधिकारिता का प्रयोग करेगा, जो उपर्युक्त रूप में निर्देशित किया जाता है। इस उपबंध द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, संसद् ने अधिनियम अधिनियमित किया और धारा 11 द्वारा यह उपबंध किया—

> *"किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, न तो उच्चतम न्यायालय और न किसी अन्य न्यायालय ही को किसी जल विवाद की बाबत अधिकारिता प्राप्त होगी और न वह उसका प्रयोग ही कर सकेगा, जो (जल विवाद) इस अधिनियम के अधीन अधिकरण को निर्देशित किया जाए।"

अनुच्छेद 262(2) 'संविधान में किसी बात के होते हुए भी' शब्दों से आरम्भ होता है, जब कि धारा 11 'किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी' शब्दों से आरम्भ होती है, जिससे यह उपदर्शित होता है कि उच्चतम न्यायालय सहित सभी न्यायालयों को ऐसे किसी

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है —

> "Notwithstanding anything contained in any other law, neither the Supreme Court nor any other court shall have or exercise jurisdiction in respect of any water dispute which may be referred to a Tribunal under this Act."

जल विवाद की बाबत अधिकारिता का प्रयोग करने से विवर्जित किया गया है, जो न्याय-निर्णयन हेतु अधिकरण को निर्देशित किया जाए। अतः यह दलील दी गई है कि अधिकरण से पूर्णतः न्यायिक कृत्य का निर्वहन करने की अपेक्षा की गई है, जिस कृत्य का निर्वहन, यदि अनुच्छेद 262 और अधिनियम की धारा 11 नहीं होती, न्यायालय द्वारा किया जाता। एक स्वतंत्र उच्च स्तरीय मशीनरी, जिसमें भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नाम निर्देशित अध्यक्ष और दो सदस्य होंगे, जो उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के पदासीन न्यायाधीशों में से लिए जाएंगे, जल विवाद का न्यायनिर्णयन करने के लिए अधिकरण गठित करेगी। चूंकि अधिकरण में राज्य के न्यायिक कृत्य विनिहित किए गए हैं, अतः उसके सभी लक्षण सिविल न्यायालय जैसे होते हैं और इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि ऐसा उच्च-स्तरीय न्यायिक निकाय अन्तरिम आदेश करने या अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए सशक्त नहीं होगा, विशेष रूप से उस समय, जब उसे किसी विद्यमान विधान को निष्प्रभाव करने या भावी विधान में हस्तक्षेप करने के लिए भी सशक्त किया गया है। चूंकि अधिकरण उच्चतम न्यायालय का विकल्प (प्रतिस्थानी) है (यदि अनुच्छेद 262 और अधिनियम की धारा 11 नहीं होती, तो अनुच्छेद 131 लागू होता), अतः यह निष्कर्ष निकालना युक्तियुक्त है कि ऐसी सभी शक्तियों का, जिनका अनुच्छेद 131 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जा सकता है, जल विवाद का न्यायनिर्णयन करते समय अधिकरण द्वारा प्रयोग किया जा सकता है और इसलिए अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की शक्ति ऐसे अधिकरण में अन्तर्निहित है और उस निमित्त अभिव्यक्त उपबंध की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे अधिकरण को, जिसे भावी विधान या कार्यपालक कार्रवाई के प्रतिकूल प्रभाव के संबंध में न्यायनिर्णयन करने के लिए अधिकारिता प्रदत्त की जाती है, प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्य को अविधिमान्य ठहराते हुए, अन्तरिम आदेश पारित करने की शक्ति अनिवार्यतः प्राप्त होनी चाहिए। अतः तमिलनाडु राज्य ने यह दलील दी है कि वर्तमान अधिकरण जैसा उच्च शक्ति वाला अधिकरण इस न्यायालय का प्रतिस्थानी है और उसके बारे में यह उपधारणा की जानी चाहिए कि उसे समुचित अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की अधिकारिता प्राप्त है। ऐसी आनुषंगिक और प्रासंगिक शक्ति सदा अधिकरण में अन्तर्निहित रहती है, जो न्यायिक कृत्यों का निर्वहन करता है। अतः यह दलील दी गई है कि प्रश्न सं० 3 का सकारात्मक उत्तर दिया जाना चाहिए।

37. उपर्युक्त निवेदन की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, तमिलनाडु राज्य ने यह दलील दी है कि जहां तक कावेरी जल विवाद के संबंध में अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की अधिकारिता के प्रश्न का संबंध है, 1991 की सिविल अपील सं० 303, 304 और 2036 में इस न्यायालय का तारीख 26 अप्रैल, 1991 का विनिश्चय पूर्वन्याय के रूप में प्रवर्तित होता है और वह उस मत पर ध्यान दिए बिना मुकदमा लड़ने वाले पक्षकारों के लिए आबद्धकर है, जो यह न्यायालय विनिश्चय हेतु निर्देशित प्रश्न की व्यापकता के संबंध में अपना सकता है। यहां यह स्मरण करना आवश्यक है कि इस न्यायालय ने तारीख 26 अप्रैल, 1991 के अपने निर्णय में यह निष्कर्ष निकाला था कि अधिकरण को किए गए निर्देश में अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने का प्रश्न सम्मिलित था और तारीख 6 जुलाई, 1991 के पत्र के साथ पठित तारीख 2 जून, 1990

के निर्देश के निबंधनों के निर्वचन पर आधारित यह निष्कर्ष संबंधित पक्षकारों के लिए स्पष्टत: आबद्धकर था और गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करने के लिए इस न्यायालय के निदेश के अनुसरण में मामले की गुणता के संबंध में अधिकरण द्वारा किया गया अन्तरिम आदेश उतना ही आबद्धकर है और संविधान के अनुच्छेद 143(1) के अधीन निर्देश से उत्पन्न होने वाली कार्यवाहियों में उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। यदि अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने का प्रश्न निर्देश का भाग है, तो अधिकरण उसका विनिश्चय करने के लिए कर्तव्याबद्ध है और ऐसा विनिश्चय अधिनियम की धारा 5(2) के अधीन रिपोर्ट गठित करेगा, जिसे प्रकाशित करने के लिए केन्द्रीय सरकार कर्तव्याबद्ध होगी, जैसी कि अधिनियम की धारा 6 द्वारा अपेक्षा की गई है। यह दलील भी दी गई है कि तमिलनाडु राज्य के मतानुसार, अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण को अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की अन्तर्निहित अधिकारिता प्राप्त है, जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया जा चुका है, भले ही अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने से संबंधित प्रश्न विनिर्दिष्ट रूप से निर्देशित किया जाता है या नहीं, और उस पर उसका विनिश्चय अधिनियम की धारा 5(2) के अधीन रिपोर्ट गठित करेगा, जिसे राजपत्र में प्रकाशित किया जाना अनिवार्य है, जैसी कि अधिनियम की धारा 6 में अपेक्षा की गई है। यदि अन्तरिम आदेश में कोई अस्पष्टता है, तो उसे अधिनियम की धारा 5(3) के अधीन उसकी बाबत सतर्कता बरती जा सकती है। अत: तमिलनाडु राज्य ने यह दलील दी है कि प्रश्न सं० 2 के दोनों भागों का सकारात्मक उत्तर दिया जाना चाहिए।

38. जहां तक निर्देश के प्रश्न सं० 1 का संबंध है, तमिल नाडु राज्य ने यह दलील दी है कि कर्नाटक अध्यादेश (अब अधिनियम) विभिन्न कारणों से संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य है। यह दलील दी गई है कि विधान का वास्तविक उद्देश्य और प्रयोजन, मुकदमेबाजी के प्रथम चक्र में असफल रहने के पश्चात्, अधिकरण के अन्तरिम आदेश को एकपक्षीय रूप से अकृत करना है। यह दलील दी गई है कि कर्नाटक राज्य को जल की उस मात्रा का, जिसका वह विनियोग करेगा, या उस सीमा का एकपक्षीय रूप से विनिश्चय करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था और नहीं है, जिस तक वह तमिल नाडु राज्य को कावेरी जल के प्रवाह को कम करेगा और तद्द्वारा तमिल नाडु राज्य के लोगों को कावेरी जल में उनके अधिकारपूर्ण अंश से वंचित करेगा। चूंकि जल के युक्तिसंगत और युक्तियुक्त उपयोग का अधिकार अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णयन का विषय है, अत: कोई एक राज्य अपनी विधायी शक्ति के उपयोग द्वारा, साम्यापूर्ण प्रभाजन के न्यायिक कृत्य को अपने हाथ में नहीं ले सकता है और जल की उस मात्रा का स्वयं विनिश्चय नहीं कर सकता है, जिसका वह उस प्रतिकूल प्रभाव पर ध्यान दिए बिना अन्तरराज्यिक नदी से उपयोग करेगा, जो वह अपनी एकपक्षीय कार्रवाई द्वारा अन्य राज्य को कारित करेगा। प्रविष्टि 17 में ऐसी शक्ति नहीं पढ़ी जा सकती है क्योंकि वह इस सिद्धांत के लिए घातक होगी कि ऐसे जल-विवाद न्याय्य हैं और वे स्वतंत्र और निष्पक्ष विशेष फोरम द्वारा न्यायनिर्णयन के लिए छोड़ दिए जाने चाहिए, जिसे वह निर्देशित किया जाए, अर्थात् विवाद का समाधान करने के लिए गठित अधिकरण द्वारा, न कि एकपक्षीय कार्यपालक या विधायी हस्तक्षेप द्वारा। अत: यह दलील दी गई है कि (चूंकि) विधान का उद्देश्य सद्भाविक नहीं है, अत: उसे प्रभावी नहीं रहने दिया जा सकता है, क्योंकि उसका विवाद के पक्षकारों के बीच जल-विवाद पर न्याय-

निर्णयन करने के लिए विशेष रूप से नियुक्त अधिकरण द्वारा पारित न्यायिक अध्यादेश को अकृत करने का प्रभाव है।

39. विधायी सक्षमता के प्रश्न के संबंध में तमिल नाडु राज्य ने यह दलील दी है कि उक्त कानून निम्नलिखित कारणों से संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य है—

(क) अध्यादेश (अब अधिनियम) संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य है, क्योंकि उसके द्वारा संविधान के अनुच्छेद 262 (न कि 7वीं अनुसूची की सुसंगत प्रविष्टि के साथ पठित, अनुच्छेद 246) द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में संसद् द्वारा अधिनियमित विधि का अकृत और निरर्थक किया जाना ईप्सित है। राज्य विधान-मण्डल को जल-विवाद के संबंध में विधान बनाने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है, क्योंकि उस चीज को नष्ट करने के लिए, जो किसी न्यायिक निकाय द्वारा केन्द्रीय विधि के अधीन की गई है, राज्य विधानमण्डल को ऐसी शक्ति प्रदत्त करना या उसकी धारणा करना असंगत होगा।

(ख) सूची 2 की प्रविष्टि 17 के अधीन होने के लिए तात्पर्यित आक्षेपित विधान का क्षेत्रातीत प्रवर्तन है क्योंकि उससे तमिल नाडु के लोगों के कावेरी जल का उपयोग करने के अधिकार से प्रत्यक्ष टकराव है।

(ग) आक्षेपित विधान विधिसम्मत शासन के विरुद्ध है और अनुच्छेद 262 द्वारा भी अननुध्यात शक्ति राज्य की विधायी शक्ति में नहीं पढ़ी जा सकती है क्योंकि उससे न्याय की आधारभूत संकल्पना विकृत हो जाएगी; और

(घ) आक्षेपित विधान से संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 द्वारा गारण्टीकृत, तमिल नाडु राज्य के निवासियों के मूल अधिकारों का उल्लंघन होता है क्योंकि कर्नाटक राज्य की कार्रवाई पूर्णतः मनमानी है और तमिल नाडु राज्य के उन निवासियों के जीवन के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा की गई है, जो अपने अस्तित्व के लिए कावेरी जल पर निर्भर हैं।

तमिल नाडु राज्य ने इस दलील पर जोर दिया है कि विधिसम्मत शासन द्वारा शासित किसी भी सभ्य समाज में वाद-जल-विवाद—के पक्षकार को प्रविष्टि 17 के अधीन विधायी शक्ति का दुरुपयोग करके, जिसके अधीन तात्पर्यित आक्षेपित विधान है, सर्वोच्च न्यायालय के विनिश्चय का पालन करते हुए अधिकरण द्वारा किए गए अन्तरिम आदेश को अकृत करने या विवाद का विनिश्चय करने का अधिकार अपने हाथ में लेने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है।

40. कोई प्रारम्भिक आक्षेप उठाए बिना और पूर्व वर्णित दलीलों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, तमिल नाडु राज्य ने यह दलील दी है कि संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता वैवेकिक है और इस न्यायालय को निर्देश का उत्तर देने से प्रविरत रहना चाहिए, जो सामान्यतया तथ्यों की पृष्ठभूमि के बिना है और उससे निरुद्देश्य जांच की संभावना है, जो अन्ततः सैद्धांतिक ही सिद्ध होगी। दूसरे, कर्नाटक राज्य ने अन्तरिम आदेश के तुरन्त पश्चात् इस न्यायालय में एक वाद (1991 का मूल वाद

सं० 1) संस्थित किया है, जिसमें उसने इस घोषणा हेतु प्रार्थना की है कि अधिकरण का तारीख 25 जून, 1991 का अन्तरिम आदेश अधिकारितारहित; अकृत और शून्य है और उसने उक्त आदेश के अपास्त किए जाने की भी प्रार्थना की है। यह दलील दी गई है कि एक ओर न्या० कासलीवाल के अनुसार इस न्यायालय का विनिश्चय अन्तिम हो गया है और वह उसके पक्षकारों के बीच पूर्व न्याय है, तो दूसरी ओर कर्नाटक राज्य इस न्यायालय के पूर्वतर आदेश को निष्प्रभाव करने के उद्देश्य से अधिष्ठायी (मूल) वाद में इस न्यायालय के समक्ष अधिकारिता के उसी प्रश्न को उठा रहा है। राष्ट्रपति के निर्देश में स्पष्टतः अधिकरण के अन्तरिम आदेश से उद्भूत होने वाले विवादों और मतभेदों के प्रति निर्देश किया गया है, जिसमें, ऐसा कहा गया है, ऐसे विवाद को जन्म दिया है, जिसके अवांछनीय परिणाम निकलने की संभावना है। तमिल नाडु राज्य ने यह दलील दी है कि ऐसे मामलों को संबंधित सरकार द्वारा प्रभावी रूप से निपटाया जा सकता है और उनके लिए राष्ट्रपति का निर्देश आवश्यक नहीं है। यदि आक्षेपित आदेश के कार्यान्वयन में कोई संदेह या कठिनाई है, तो अधिनियम की धारा 5(3) का सदैव अवलम्ब लिया जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों में यह दलील दी गई है कि इस न्यायालय को निर्देश का उत्तर देने से इनकार कर देना चाहिए।

41. पाण्डिचेरी संघ राज्य क्षेत्र ने यह दलील दी है कि अध्यादेश (अब अधिनियम) का प्रख्यापन लम्बे समय से चले आ रहे जल-विवाद को और आगे खींचने (ले जाने) के लिए आशयित है, जो इस न्यायालय द्वारा उस निमित्त परमादेश जारी किए जाने के पश्चात् ही अधिकरण को निर्देशित किया गया और जिससे राज्य, किसानों और अन्य निवासियों के हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, जो कावेरी नदी के जल का उपयोग करते हैं। यह दलील गई है कि उक्त विधान निम्नलिखित कारणों से असंवैधानिक और आभासिक विधान है—

(क) सूची 2 की प्रविष्टि 17 के अंतर्गत आने वाले विषय पर विधि अधिनियमित करने की राज्य विधान मण्डल की शक्ति सूची 1 की प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन है, और जब एक बार संसद् ने नदी बोर्ड अधिनियम की धारा 2 में इस संबंध में घोषणा कर दी थी, तब राज्य विधानमण्डल आक्षेपित विधि अधिनियमित करने के लिए सक्षम नहीं था,

(ख) जब एक बार केन्द्रीय सरकार ने अधिनियम के उपबंधों के अधीन कावेरी जल-विवाद स्वतंत्र अधिकरण को सौंप दिया था, तब कर्नाटक के लिए आक्षेपित विधि अधिनियमित करना सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय नहीं था,

(ग) बहने वाले जल के मामले में, तटवर्ती राज्यों को, उसके उपयोग के सिवाय, उसमें कोई स्वामित्व या साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं और इसलिए सूची 2 की प्रविष्टि 17 के अधीन उस पर विधान बनाने की शक्ति, जल की रूढ़िगत मात्रा प्राप्त करने के तटवर्ती राज्य के अधिकार के अधीन, केवल भोग-अधिकार तक ही जा सकती है,

(घ) आक्षेपित विधान का उद्देश्य अधिकरण के अन्तरिम आदेश को निरर्थक बनाना है और उस सीमा तक, जिस तक उसके द्वारा न्यायिक शक्तियों के प्रयोग में हस्तक्षेप ईप्सित है, वह असंवैधानिक है,

(ङ) आक्षेपित विधान से संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है और वह तमिलनाडु और पांडिचेरी को जल के प्रदाय में कमी करने के लिए आशयित है, जो संविधान के अनुच्छेद 38 और 39 की धारणा के भी विरुद्ध है, और

(च) आक्षेपित विधान द्वारा संविधान के अनुच्छेद 262 के आधार पर अधिनियमित अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण के अंतरिम आदेश को आच्छादित करना ईप्सित है और चूंकि वह केंद्रीय विधान के विरुद्ध है, अत: प्रतिकूल होने के कारण वह शून्य है।

उपर्युक्त कारणों से पांडिचेरी ने यह दलील दी है कि अध्यादेश (अब अधिनियम) सांविधानिक रूप से अमान्य है।

42. प्रश्न सं० 2 के संबंध में यह दलील दी गई है कि अधिकरण को निर्देशित जल-विवाद में अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त किए जाने से संबंधित विवाद समाविष्ट था, जैसा कि न्या० कासलीवाल ने अभिनिर्धारित किया था और इसलिए अधिकरण द्वारा किया गया अन्तरिम आदेश अधिनियम की धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट (गठित करता) है और परिणामत: केंद्रीय सरकार उसे प्रकाशित करने के लिए बाध्य है, जैसी कि अधिनियम की धारा 6 द्वारा अपेक्षा की गई है। जब एक बार वह इस प्रकार प्रकाशित कर दिया जाता है, तब वह सर्वबंधी विनिश्चय के रूप में प्रवर्तित होगा किंतु प्रकाशन के बिना भी वह व्यक्तिबंधी विनिश्चय के रूप में कर्नाटक के लिए आबद्धकर होगा। यदि कोई स्पष्टीकरण या मार्गदर्शन आवश्यक हो, तो वह अधिनियम की धारा 5(3) के आधार पर अधिकरण से प्राप्त किया जा सकता है। जब एक बार स्पष्टीकरण या मार्गदर्शन की ईप्सा करने का समय समाप्त हो जाता है, तब विधि द्वारा केंद्रीय सरकार पर अधिनियम की धारा 6 के अधीन रिपोर्ट प्रकाशित करने की बाध्यता अधिरोपित (व्यादिष्ट) की गई है। पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र ने यह दलील दी है कि प्रश्न सं० 2 के दोनों तत्वों का सकारात्मक उत्तर दिया जाना चाहिए।

43. जहां तक प्रश्न सं० 3 का संबंध है, यह दलील दी गई है कि अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण के, यद्यपि वह न्यायालय नहीं है, सभी लक्षण न्यायालय जैसे होते है, क्योंकि उससे न्यायिक कृत्य का निर्वहन करने की आशा की जाती है और इसलिए यह उपधारणा की जानी चाहिए कि उसे अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने की प्रासंगिक और आनुषंगिक शक्तियां प्राप्त हैं, यदि साम्या ऐसी अपेक्षा करती है। ऐसा इसलिए है कि इस न्यायालय सहित, सभी न्यायालयों की अधिकारिता संविधान के अनुच्छेद 262(2) के साथ पठित, अधिनियम की धारा 11 के आधार पर हटा (वापस ले) ली गई है। अत: अधिकरण से दो या अधिक राज्यों के बीच जल-विवाद का न्यायनिर्णयन करने के न्यायिक कृत्य का निर्वहन करने की अपेक्षा की जाती है और इसलिए यह माना जाना चाहिए कि उसे अंतरिम

अनुतोष अनुदत्त करने की अंतर्निहित शक्ति प्राप्त है, जो ऐसे सभी न्यायिक निकायों में अंतर्निहित रहती है अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए शक्ति प्रदान करने वाले अभिव्यक्त उपबंध के अभाव से इस मत में कोई कमी नहीं आती है कि अधिकरण में ऐसी शक्ति अन्तर्निहित है, जिससे अनिवार्यतः न्यायिक कृत्य का निर्वहन करने की अपेक्षा की जाती है। ऐसे कृत्य का निर्वहन करने के लिए यह आवश्यक है कि अधिकरण को न्याय-निर्णयन की सहायता में समय-समय पर अन्तरिम आदेश पारित करने की अन्तर्निहित शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। अतः पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र का यह मत है कि प्रश्न सं० 3 का सकारात्मक उत्तर दिया जाना चाहिए।

44. कर्नाटक के पक्षकथन के समर्थन में, राज्य के महाधिवक्ता सहित, कर्नाटक के विभिन्न व्यक्तियों और निकायों द्वारा छह मध्यक्षेप-आवेदन फाइल किए गए हैं, जिनमें न्यूनाधिक रूप में वही दलीलें दी गई हैं, जो स्वयं उक्त राज्य द्वारा दी गई हैं। एक मध्यक्षेप-आवेदन तमिलनाडु समाज द्वारा फाइल किया गया है, जिसने आरंभिक रिट याचिका फाइल की थी, जिसमें अधिनियम के अधीन अधिकरण गठित करने का आदेश दिया गया था। मध्यक्षेपियों द्वारा दी गई दलीलें तमिलनाडु राज्य द्वारा फाइल किए गए लिखित निवेदनों में सम्मिलित (की गई) है, अतः उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। उक्त मध्यक्षेपी ने काउंसेल, श्री अशोक सेन के माध्यम से लिखित निवेदन भी फाइल किए हैं, जिन पर हम इस निर्णय के अनुक्रम में विचार करेंगे।

45. उक्त तीनों प्रश्नों के बारे में, जो संविधान के अनुच्छेद 143(1) के अधीन इस न्यायालय को निर्देशित किए गए हैं, इस बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है और वस्तुतः कोई था भी नहीं, कि प्रश्न सं० 2, अनन्यतः और पूर्णतः अधिकरण के अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने वाले आदेश से उत्पन्न हुआ है। अब प्रश्न यह है कि क्या उक्त आदेश अधिनियम की धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट (गठित करता) है और उसे प्रभावी बनाने के लिए, उसका केंद्रीय सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया जाना आवश्यक है। प्रथम प्रश्न कर्नाटक अध्यादेश (अब अधिनियम) की सांविधानिक मान्यता के संबंध में है। यद्यपि इस प्रश्न में विनिर्दिष्ट रूप से कावेरी जल-विवाद या अधिकरण द्वारा पारित अंतरिम आदेश के प्रति निर्देश नहीं किया गया है, तथापि, उक्त कानून की उद्देशिका से इस बारे में कोई संदेह शेष नहीं रह जाता है कि वह कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के जलों पर निर्भर कर्नाटक में कावेरी द्रोणी के सिंचाई योग्य क्षेत्रों में सिंचाई के संरक्षण और परिरक्षण के संबंध में है। उक्त विधि के उपबंधों से, जो इसमें पहले ही उद्धृत किए जा चुके हैं, इस संबंध में किसी प्रकार की शंका शेष नहीं रहती है कि राज्य सरकार को, किसी ···अधिकरण के किसी आदेश, रिपोर्ट या विनिश्चय में, चाहे वह उक्त अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किया गया हो या उसके पश्चात्, सिवाय अधिनियम की धारा 6 के साथ पठित धारा 5(2) के अधीन अंतिम विनिश्चय में, किसी बात के होते हुए भी, कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के प्रवाहों से प्रत्येक जल-वर्ष के दौरान उतनी मात्रा में जल निकालने या निकलवाने का कर्तव्य सौंपा गया है, जितना वह आवश्यक समझे। अतः इस बारे में कोई शंका नहीं हो सकती है कि यदि इस विशेष कर्नाटक अधिनियमिति के उपबंध वैध रूप से प्रभावी होते हैं, तो अधिकरण का अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने वाला तारीख 25 जून का आदेश आच्छादित हो जाएगा। मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, प्रश्न सं० 1 स्पष्टतः अधिकरण को निर्देशित

कावेरी जल-विवाद और उक्त निकाय द्वारा किए गए अन्तरिम आदेश से जुड़ा हुआ है। तमिलनाडु और पांडिचेरी द्वारा यह दलील दी गई कि तृतीय प्रश्न से, यद्यपि वह प्रकटतः निर्दोष (हानिरहित) और साधारण प्रकृति का प्रतीत होता है, वस्तुतः अधिकरण के अन्तरिम आदेश के अकृत हो जाने की संभावना है, इस बारे में कोई शंका नहीं हो सकती है कि प्रश्न सं० 3 पर इस न्यायालय की राय का निश्चय ही अधिकरण के अन्तरिम आदेश पर प्रभाव पड़ेगा। इस बात को याद रखते हुए, अब हम न्यायालय में किए गए निवेदनों को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय को निर्देशित प्रश्नों पर विचार करने के लिए अग्रसर होते हैं।

46. अब हम प्रत्येक प्रश्न के प्रति निर्देश से संबंधित दलीलों पर विचार करेंगे।

प्रश्न सं० 1 :

47. सर्वप्रथम, इस प्रश्न पर दी गई दलीलों की विधिमान्यता पर विचार करने के लिए संविधान के सुसंगत उपबंधों का विश्लेषण करना आवश्यक है।

48. विधायी शक्तियों के वितरण का उपबंध संविधान के भाग xi के अध्याय I में किया गया है। अनुच्छेद 245 में, अन्य बातों के साथ यह कहा गया है कि इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद् भारत के संपूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी और किसी राज्य का विधानमंडल संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगा। अनुच्छेद 246 में, अन्य बातों के साथ, यह उपबंध किया गया है कि उक्त अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) के अधीन रहते हुए, किसी राज्य के विधानमंडल को 7वीं अनुसूची की राज्य सूची में प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में उस राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। उक्त अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) में, संसद की संघ सूची में प्रगणित विषयों में से किसी विषय की बाबत विधि बनाने की अनन्य शक्तियों और संसद् और राज्य के विधानमंडल की समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से किसी विषय की बाबत विधि बनाने की शक्ति के प्रति निर्देश किया गया है। अनुच्छेद 248 द्वारा संसद् को किसी ऐसे विषय के संबंध में, जो समवर्ती सूची या राज्य सूची में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति प्रदत्त की गई है।

49. संघ सूची की प्रविष्टि 56 इस प्रकार है—

"उस सीमा तक अंतरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास जिस तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियमन और विकास को संसद् विधि द्वारा लोक हित में समीचीन घोषित करे।"

50. इस प्रविष्टि के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि जहां तक अंतरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का संबंध है, संसद् उनका विनियमन और विकास संसदीय अधिनियमिति द्वारा अपने हाथ में ले सकती है। तथापि, उक्त अधिनियमिति में यह अवश्य ही घोषित किया जाना चाहिए कि संघ के नियंत्रणाधीन ऐसा विनियमन और विकास लोक हित में समीचीन है।

51. राज्य सूची की प्रविष्टि 17 इस प्रकार है—

"सूची 1 की प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जल, अर्थात् जल प्रदाय, सिंचाई और नहरे, जल निकास और तटबंध, जल भण्डारकरण और जल शक्ति।"

52. उक्त दोनों प्रविष्टियों की परीक्षा से यह दर्शित होता है कि राज्य को कतिपय सीमाओं अर्थात् अन्तरराज्यिक नदी जलों के विनियमन और विकास पर नियंत्रण के अधीन रहते हुए, अन्तरराज्यिक नदियों से बहने वाले जल सहित, जल के सभी पहलुओं की बाबत विधान बनाने की सक्षमता प्राप्त है, अर्थात् अन्तरराज्यिक नदी जलों के विनियमन और विकास पर नियंत्रण संघ द्वारा अपने हाथ में नहीं लिया जाना चाहिए था और दूसरे, राज्य अपने राज्यक्षेत्र से परे जल के किसी पहलू की बाबत या उसे प्रभावित करने वाला कोई विधान पारित नहीं कर सकता है। तथापि, अन्तरराज्यिक नदी जलों की बाबत राज्य विधानमंडल को केवल इस सीमा तक संसदीय विधान द्वारा सक्षमता से वंचित किया गया है, जिस तक पश्चात् कथित विधान प्रभावी है, उससे अधिक नहीं, और केवल उसी स्थिति में, यदि प्रश्नगत संसदीय विधान में यह घोषित किया गया हो कि अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का नियंत्रण लोक हित में समीचीन है, अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में, यदि ऐसा विधान बनाया जाता है, जो उक्त घोषणा करने में असफल रहता है, तो उससे प्रविष्टि 17 के अधीन अन्तरराज्यिक नदी जल की बाबत विधान बनाने की राज्य की शक्तियां प्रभावित नहीं होंगी।

53. सूची 2 की प्रविष्टि 14, अन्य बातों के साथ, कृषि के संबंध में है। जहां तक कृषि नदी-जल सहित, जल पर निर्भर करती है, राज्य विधानमंडल कृषि के संबंध में विधान अधिनियमित करते समय, जल प्रदायों, सिंचाई और नहरों, जल निकास और तटबंध, जल भण्डारकरण और जल शक्ति सहित, अपने जल-संसाधनों के विनियमन और विकास हेतु उपबंध करने के लिए सक्षम है, जो प्रविष्टि 17 में वर्णित विषय हैं। तथापि, प्रविष्टि 14 के अधीन अधिनियमित ऐसा विधान, जहां तक उसका संबंध अन्तरराज्यिक नदी जल और उसके विभिन्न उपयोगों और उसका उपयोग करने की रीतियों से है, प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन होगा। इसी प्रकार सूची 2 की प्रविष्टि 18 भी है, जिसमें अन्य बातों के साथ भूमि सुधार का उल्लेख किया गया है, जिसके द्वारा राज्य विधानमंडल को प्रविष्टि 14 और 17 के अधीन जैसा ही विधान उन्हीं निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए, अधिनियमित करने की शक्तियां दी जा सकती हैं।

54. संघ सूची की प्रविष्टि 97 अवशिष्टीय है और उसके अधीन संघ को अन्तरराज्यिक नदी जल से संबंधित किसी विषय की बाबत, जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में प्रगणित नहीं है, विधान बनाने की शक्ति प्राप्त है। तद्नुसार, राज्य विधानमण्डल उक्त पहलुओं या विषयों के संबंध में विधान नहीं बना सकता है।

55. संविधान का अनुच्छेद 131 उच्चतम न्यायालय की आरम्भिक अधिकारिता के संबंध में है और उसमें यह कहा गया है :—

"131. उच्चतम न्यायालय की प्रारम्भिक अधिकारिता—इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए—

(क) भारत सरकार और एक या अधिक राज्यों के बीच; या

(ख) एक ओर भारत सरकार और किसी राज्य या राज्यों और दूसरी ओर एक या अधिक अन्य राज्यों के बीच; या

(ग) दो या अधिक राज्यों के बीच,

किसी विवाद में, यदि और जहां तक उस विवाद में (विधि का या तथ्य का) ऐसा कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है जिस पर किसी विधिक अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर है तो और वहां तक अन्य न्यायालयों का अपवर्जन करके उच्चतम न्यायालय को आरम्भिक अधिकारिता होगी :

परन्तु उक्त अधिकारिता का विस्तार उस विवाद पर नहीं होगा जो किसी ऐसी संधि, करार, प्रसंविदा, वचनबन्ध, सनद या वैसी ही अन्य लिखत से उत्पन्न हुआ है जो इस संविधान के प्रारम्भ से पहले की गई थी या निष्पादित की गई थी और ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् प्रवर्तन में है या जो उपबंध करती है कि उक्त अधिकारिता का विस्तार ऐसे विवाद पर नहीं होगा।"

56. उक्त अनुच्छेद से यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय को, अन्य बातों के साथ-साथ, दो या अधिक राज्यों के बीच किसी विवाद में आरम्भिक अधिकारिता प्राप्त है, जहां विवाद में ऐसा कोई प्रश्न, चाहे वह विधि का हो या तथ्य का, अन्तर्वलित है, जिस पर विधिक अधिकार का अस्तित्व और विस्तार निर्भर करता है, सिवाय ऐसे मामलों के, जो परन्तुक द्वारा उक्त अधिकारिता से विनिर्दिष्ट रूप से अपवर्जित कर दिए गए हैं। तथापि, संसद् को विधि द्वारा यह उपबंध करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 262 द्वारा भी शक्ति प्रदत्त की गई है कि उच्चतम न्यायालय या कोई अन्य न्यायालय किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटी के या उसमें जल के उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत किसी विवाद या परिवाद की बाबत अधिकारिता का प्रयोग नहीं करेगा। अधिनियम, अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 11 में न्यायालयों की अधिकारिता के ऐसे अपवर्जन का स्पष्ट रूप से उपबंध किया गया है। उक्त धारा इस प्रकार है—

* "धारा 11—किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उच्चतम न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को किसी जल विवाद की बाबत, जो इस अधिनियम के अधीन अधिकरण को निर्देशित किया जाए, अधिकारिता प्राप्त नहीं होगी या वह उसका प्रयोग नहीं करेगा।"

57. इस प्रकार अनुच्छेद 262 के साथ पठित, अधिनियम के इस उपबंध द्वारा अन्तरराज्यिक जल-विवाद का जो अधिनियम के अधीन स्थापित अधिकरण को निर्देशित

*अंग्रेजी में इस प्रकार है—

"Sec. 11—Notwithstanding anything contained in any other law, neither the Supreme Court nor any other court shall have or exercise jurisdiction in respect of any water dispute which may be referred to a Tribunal under this Act."

1991(11) eILR(PAT) SC 16

किया जाए, आरम्भिक संज्ञान या अधिकारिता अनुच्छेद 131 के अधीन उच्चतम न्यायालय सहित, किसी न्यायालय की परिधि से अपवर्जित की गई है।

58. अब हम प्रश्नगत कर्नाटक-अध्यादेश के उपबंधों का विश्लेषण करना उचित समझते हैं, जिसका मूल पाठ पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। उसकी उद्देशिका में यह कहा गया है कि वह (i) कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के जलों पर निर्भर कर्नाटक में कावेरी द्रोणी के सिंचाई योग्य क्षेत्रों में सिंचाई के संरक्षण और परिरक्षण का उपबंध करने के लिए जारी किया गया है; और (ii) कर्नाटक के राज्यपाल का यह समाधान हो गया था कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान थीं, जिनके कारण उनके लिए उक्त संरक्षण और परिरक्षण हेतु तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक हो गया था। वे सिंचाई योग्य क्षेत्र, जिनके संरक्षण और परिरक्षण की अध्यादेश में ईप्सा की गई है, अध्यादेश की अनुसूची में वर्णित हैं। स्वीकृततः, अनुसूची में कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच 1924 के करार की अवधि के दौरान वर्ष 1972 में यथाविद्यमान सिंचाईयोग्य क्षेत्र और 1972 से अध्यादेश की तारीख तक उनमें वृद्धि तथा ऐसे क्षेत्र भी सम्मिलित हैं, जो अनुसूची के स्तम्भ 2 में वर्णित परियोजनाओं में से कुछ परियोजनाओं के कारण सिंचाई के अधीन लाए जाने हैं। उसके पश्चात् अध्यादेश के खण्ड 3(1) में राज्य सरकार के उक्त सिंचाईयोग्य क्षेत्र में कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के जलों से सिंचाई का संरक्षण, परिरक्षण और अनुरक्षण करने के कर्तव्य की घोषणा की गई है। तत्पश्चात्, उक्त खण्ड के उप-खण्ड(2) में राज्य सरकार को प्रत्येक जल—वर्ष के दौरान कावेरी नदी और उसकी सहयक नदियों के प्रवाहों से जल की इतनी मात्रा, जितनी वह आवश्यक समझे, ऐसी रीती में और ऐसे अन्तरालों पर निकालने या निकलवाने के लिए शक्तियां प्रदत्त की गई हैं, जिन्हें राज्य सरकार या उसके द्वारा पदाभिहित, मुख्य इंजीनियर (की पंक्ति) से अन्यून पंक्ति का कोई अधिकारी उचित और ठीक समझे। (जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है) अतः इस खण्ड द्वारा राज्य सरकार या उसके द्वारा पदाभिहित अधिकारी में कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों से जल की किसी भी मात्रा का ऐसी किसी रीति में और ऐसे किसी भी अन्तराल पर विनियोजन करने की पूर्ण शक्ति निहित की गई है, जो ठीक और उचित समझा जाए। उक्त खण्ड द्वारा प्रदत्त शक्ति कर्नाटक राज्य के सिंचाई-योग्य क्षेत्र के संरक्षण और परिरक्षण की विचारणा के सिवाय किसी भी विचारणा द्वारा अनिषिद्ध और अनिर्बन्धित है।

59. खण्ड 4 अपनी भाषा और प्रवर्तन में और भी अधिक पूर्ण है, क्योंकि उसमें यह घोषित किया गया है कि अध्यादेश और तद्धीन बनाए गए कोई भी नियम और आदेश, अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम की धारा 6 के साथ पठित धारा 5 की उपधारा(2) के उपबंधों के अधीन अन्तिम विनिश्चय के सिवाय किसी न्यायालय या अधिकरण के किसी आदेश, रिपोर्ट या विनिश्चय में किसी बात के होते हुए भी (चाहे वह अध्यादेश के प्रारम्भ से पूर्व किया गया हो या उसके पश्चात्) प्रभावी होंगे।

60. खण्ड(5) में यह कहा गया है कि जब कभी इस अध्यादेश के उपबंधों को प्रभावी बनाने में कोई कठिनाई उत्पन्न हो, तब राज्य सरकार, आदेश द्वारा, अवसर की अपेक्षा के अनुसार, ऐसी कोई भी चीज कर सकेगी, जो उक्त कठिनाई को दूर करने के

प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हो, और खण्ड (6) द्वारा राज्य सरकार को अध्यादेश के प्रयोजन को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है। खण्ड (4), (5) और (6) का समग्रतः परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि अध्यादेश और तद्धीन बनाए गए नियम और आदेश उच्चतम न्यायालय और अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम के अधीन अधिकरण सहित, किसी भी न्यायालय के किसी आदेश, रिपोर्ट या विनिश्चय पर अभिभावी होंगे। वह एकमात्र विनिश्चय, जो अध्यादेश के अध्यारोही प्रभाव से अपवर्जित किया गया है, अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम की धारा 6 के साथ पठित, धारा 5(2) के अधीन जल विवाद अधिकरण द्वारा किया गया अन्तिम विनिश्चय है।

61. उक्त अध्यादेश के इन उपबंधों का उद्देश्य स्पष्ट है। अधिकरण के तारीख 25 जून, 1991 के आदेश पर विचार करते समय और कर्नाटक राज्य द्वारा लिए गए इस आधार के संदर्भ में कि अधिकरण को कोई अन्तरिम आदेश पारित करने या कोई अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की कोई शक्ति या अधिकारिता प्राप्त नहीं है, यह बताना उचित होगा कि वह अधिकरण के उक्त विनिश्चय और उसके कार्यान्वयन को निष्प्रभाव करने के लिए है। इस प्रकार अध्यादेश का संसद की विधि के अधीन नियुक्त अधिकरण के किसी भी अन्तरिम आदेश को उपेक्षित और अकृत करने का प्रभाव है। कर्नाटक राज्य की ओर से हमारे समक्ष इस स्थिति के बारे में कोई विवाद नहीं उठाया गया है। अध्यादेश का अन्य प्रभाव अनन्यतः कर्नाटक राज्य को कावेरी नदी और उसकी सहायक नदियों के इतने जल का, जितना वह आवश्यक समझे और ऐसी रीति में और ऐसे अन्तरालों पर, जिन्हें वह ठीक और उचित समझे यद्यपि अधिकरण द्वारा अन्तिम न्यायनिर्णयन के लम्बित रहते विनियोग आरक्षित रखना है।

62. इस बाबत कोई विवाद नहीं उठाया जा सकता है कि अधिनियम, अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 प्रविष्टि 56 के अधीन विधान नहीं है। प्रथमतः, प्रविष्टि 56 में अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का उल्लेख किया गया है और वह विवाद और उनके संबंध में तटवर्ती राज्यों के बीच विवादों और उनके न्यायनिर्णयन के सम्बन्ध में नहीं है। दूसरे, यदि यह मान भी लिया जाता है कि "विनियमन और विकास" पद की परिधि के अंतर्गत उनसे उद्भूत होने वाले विवादों का समाधान और उनका न्यायनिर्णयन करने हेतु उपबंध भी आता है, तब भी उक्त अधिनियम में प्रविष्टि 56 द्वारा अपेक्षित घोषणा नहीं की गई है। स्पष्टतः यह संयोगवश लोप नहीं है बल्कि प्रविष्टि की जानबूझकर उपेक्षा है क्योंकि वह विधान की विषय-वस्तु को लागू नहीं होती है। तीसरे, तीनों सूचियों में से किसी भी सूची की किसी भी प्रविष्टि में अन्तरराज्यिक नदी जलों के सम्बन्ध में विवादों के न्यायनिर्णयन के प्रति विनिर्दिष्ट रूप से निर्देश नहीं किया गया है।

63. इस बात का कि अन्तरराज्यिक नदी जलों से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन के विषय का 7वीं अनुसूची की किसी भी प्रविष्टि में उल्लेख क्यों नहीं किया गया है, कारण खोजना कठिन नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 262 में ऐसे न्यायनिर्णयन का विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया गया है। उक्त अनुच्छेद "जलों से संबंधित विवाद" शीर्षक के अधीन वर्णित है, और इस प्रकार है—

"262. अन्तरराज्यिक नदियों या नदी-घाटियों के जल सम्बन्धी विवादों का न्यायनिर्णयन—(1) संसद, विधि द्वारा, किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी-घाटियों के या उनमें जल के प्रयोग, वितरण या नियंत्रण के सम्बन्ध में किसी विवाद या परिवाद के न्यायनिर्णयन के लिए उपबंध कर सकेगी।

(2) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, संसद, विधि द्वारा, उपबंध कर सकेगी कि उच्चतम न्यायालय या कोई अन्य न्यायालय खण्ड (1) में निर्दिष्ट किसी विवाद या परिवाद के सम्बन्ध में अधिकारिता का प्रयोग नहीं करेगा।"

64. उक्त अनुच्छेद के विश्लेषण से यह दर्शित होता है कि संसद् को ऐसे विवादों के न्यायनिर्णयन का उपबंध करने वाली विधि अधिनियमित करने के लिए अनन्य शक्ति प्रदत्त की गई है। ऐसे विवाद या परिवाद, जिनके लिए न्यायनिर्णयन का उपबंध किया जा सकेगा, किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटियों के या उनमें जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण के संबंध में हैं। "उपयोग", "वितरण" और "नियंत्रण" शब्दों का व्यापक अर्थ है और उनके अंतर्गत उक्त जलों का विनियमन और विकास भी आ सकेगा। उक्त उपबंधों से न्यायनिर्णयन की परिधि की व्यापकता स्पष्टता रूप में उपदर्शित होती है क्योंकि उसके अंतर्गत उक्त जलों के उपयोग की सीमा और रीति का अवधारण, और उसकी बाबत निदेश देने की शक्ति भी आएगी। उक्त अनुच्छेद की भाषा को प्रविष्टि 56 और प्रविष्टि 17 की भाषा से भी प्रभेदित किया जाना है। अनुच्छेद 262(1) में किसी विवाद या परिवाद के न्यायनिर्णयन का उल्लेख है और वह भी किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटी के या उसमें जलों के उपयोग वितरण या नियंत्रण की बाबत, जब कि प्रविष्टि 56 में अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का उल्लेख है। इस प्रकार अनुच्छेद 262 और प्रविष्टि 56 के बीच अन्तर यह है कि पूर्वकथित में किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटी के जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत विवादों के न्यायनिर्णयन का उल्लेख है, जबकि प्रविष्टि 56 में अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का उल्लेख किया गया है। (जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)। इसी प्रकार प्रविष्टि 17 में, प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जल, अर्थात्, जल प्रदायों, सिंचाई और नहरों, जल निकास और तटबंधों, जल भण्डारकरण और जल शक्ति का उल्लेख किया गया है। उसमें समग्रतः अन्तरराज्यिक नदी या विवादों के न्यायनिर्णयन का उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि वस्तुतः वह ऐसा नहीं कर सकता है क्योंकि राज्य केवल अपने राज्यक्षेत्र के अंतर्गत आने वाले जल के विषय में ही कार्रवाई कर सकता है। अनुच्छेद 262, प्रविष्टि 56 और प्रविष्टि 17 के बीच इन अन्तरों को ध्यान में रखना आवश्यक है क्योंकि अध्यादेश की विधिमान्यता के संबंध में तर्कों और प्रति-तर्कों का उनसे संबंध है।

65. हम पहले ही अनुच्छेद 262 के एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू का उल्लेख कर चुके हैं, अर्थात् अनुच्छेद के खण्ड (2) में यह उपबंध किया गया है कि संसद्, इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, विधि द्वारा खण्ड (1) में निर्दिष्ट किसी विवाद या परिवाद के संबंध में उच्चतम न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित कर सकेगी

जिसके न्यायनिर्णयन के लिए ऐसी विधि में उपबंध किया गया है। यह बात भी हमारे ध्यान में है कि अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम की धारा 11 में ऐसा उपबंध किया गया है।

66. उक्त अधिनियम, जैसा कि उसकी उद्देशिका से दर्शित होता है, "अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के जलों से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन" का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया है। अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (ग) में "जल विवाद" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

*"2. इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो,—

(क) ....

(ख) ....

(ग) "जल विवाद" से निम्नलिखित की बाबत दो या अधिक राज्य सरकारों के बीच कोई विवाद या मतभेद अभिप्रेत है—

(i) किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटी के या उसमें जलों का उपयोग, वितरण या नियंत्रण; या

(ii) ऐसे जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण से संबंधित किसी करार के अनुसार निर्वचन या ऐसे करार का कार्यान्वयन; या

(iii) धारा 7 में अन्तर्विष्ट प्रतिषेध के उल्लंघन में किसी जल उपकर (रेट) का उद्ग्रहण।"

67. अधिनियम की धारा 3 में यह कहा गया है कि यदि किसी राज्य की सरकार को ऐसा प्रतीत होता है कि किसी अन्य राज्य की सरकार के साथ उसमें वर्णित प्रकार का जल विवाद उत्पन्न हो गया है या उसके उत्पन्न होने की संभावना है, तो राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार से न्यायनिर्णयन हेतु जल विवाद अधिकरण को निर्देशित करने की प्रार्थना

*अंग्रेजी में इस प्रकार है—

"2. In this Act, unless the context otherwise requires,—

(a) ... ...

(b) ... ...

(c) "Water dispute" means any dispute or difference between two or more State Governments with respect to

(i) the use, distribution or control of the waters of, or in, any inter-State river or river valley; or

(ii) the interpretation of the terms of any agreement relating to the use, distribution or control of such waters or the implementation of such agreement; or

(iii) the levy of any water rate in contranention of the prohibition contained in section 7."

कर सकेगी। अधिनियम की धारा 4 में अधिकरण के गठन का उपबंध किया गया है, जब अधिकरण को विवाद निर्देशित करने का अनुरोध प्राप्त होता है और केन्द्रीय सरकार की यह राय होती है कि जल विवाद का बातचीत द्वारा समाधान नहीं किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 5 में अधिकरण से, उसे निर्देशित मामले का अन्वेषण करने और अपने निष्कर्षों और विनिश्चय की रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित करने की अपेक्षा की गई है। उसके पश्चात् केन्द्रीय सरकार को अधिनियम की धारा 6 के अधीन विनिश्चय प्रकाशित करना होता है, जो विनिश्चय विवाद के पक्षकारों के लिए आबद्धकर और अन्तिम होता है और उनके द्वारा उसे प्रभावी बनाया जाना है। अन्य उपबंधों के साथ-साथ, अधिनियम के इन प्रमुख उपबंधों से स्पष्टत: यह दर्शित होता है कि नाम के अतिरिक्त, अधिनियम संसद् द्वारा अन्तरराज्यिक नदियों या नदी घाटियों के या उनमें जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण के संबंध में तटवर्ती राज्यों के बीच विवादों के न्यायनिर्णयन हेतु विनिर्दिष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 262 के उपबंधों के अनुसरण में अधिनियमित किया गया है। उक्त अधिनियम प्रविष्टि 56 से संयोज्य नहीं है और इसलिए उसके अंतर्गत प्रविष्टि 56 या प्रविष्टि 17 द्वारा आविष्ट क्षेत्र नहीं आता है। चूंकि उक्त विवादों के न्यायनिर्णयन का विषय विनिर्दिष्ट रूप से और अनन्यत: अनुच्छेद 262 के अंतर्गत आता है, अत: आवश्यक विवक्षा द्वारा, उक्त विषय प्रविष्टि 56 और 17 के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र से अपवर्जित किया गया है। अत: प्रविष्टि 56 के अधीन संसद् के लिए या प्रविष्टि 17 के अधीन राज्य विधानमण्डल के लिए उक्त विवादों के न्यायनिर्णयन का उपबंध करने वाला विधान या ऐसा विधान अधिनियमित करना अनुज्ञेय नहीं है, जो किसी भी रीति में अनुच्छेद 262 के अधीन विधि द्वारा स्थापित न्यायनिर्णयन हेतु मशीनरी की न्यायनिर्णयनकारी प्रक्रिया या न्यायनिर्णयन को प्रभावित करे या उसमें हस्तक्षेप करे। यह बात इस तथ्य के अतिरिक्त है कि राज्य सरकार अन्यथा भी न्यायनिर्णयन का उपबंध करने या अपने राज्यक्षेत्र के परे अन्तरराज्यिक नदी जलों की बाबत या ऐसे जलों के उपयोग, वितरण या नियंत्रण से संबंधित, उसके और किसी अन्य राज्य के बीच विवादों के संबंध में न्यायनिर्णयनकारी प्रक्रिया या किए गए न्यायनिर्णयन को प्रभावित करने में अक्षम होगा। ऐसा कोई भी अधिनियम प्रकृति में राज्यक्षेत्रातीत और इसलिए उसकी सक्षमता के परे होगा।

68. श्री वेणुगोपाल ने इस संबंध में यह दलील दी है कि संघ सूची की प्रविष्टि 97 अन्तरराज्यिक नदी जलों के उपयोग, वितरण और नियंत्रण के विषय के संबंध में है। ऐसी नदियों के जलों का उपयोग, वितरण और नियंत्रण, स्वत:, ऐसा विषय नहीं है, जो अनुच्छेद 262 के अंतर्गत आता है। उनके अनुसार, वह प्रविष्टि 56 के अंतर्गत आने वाला विषय भी नहीं है, जिसमें केवल अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास का उल्लेख है, जिसका अर्थ यह हुआ कि उसमें समग्र रूप से नदियों और नदी घाटियों का उल्लेख है, न कि किसी विशेष स्थान पर या में जलों का। (जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)। इसके अतिरिक्त, उनके अनुसार, विनियमन और विकास का, विभिन्न तटवर्ती राज्यों के बीच अन्तराज्यिक नदी के जलों के उपयोग, वितरण या प्रभाजन से कोई संबंध नहीं है। अत: यह माना जाना चाहिए कि यह विषय उक्त अवशिष्टीय प्रविष्टि 97 के अंतर्गत आता है।

69. विद्वान् काउंसेल के प्रति सम्यक् सम्मान दर्शित करते हुए, हम यह कहना चाहते हैं कि प्रविष्टि 97 का यह निर्वचन स्वीकार करना संभव नहीं है। प्रथमतः, ऐसा इस कारण है कि प्रविष्टि 56 में, "अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास" पद के अंतर्गत विभिन्न तटवर्ती राज्यों के बीच अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के जलों का उपयोग, वितरण और प्रभाजन आएगा। अन्यथा संघ द्वारा विनियमन और विकास को अपने नियंत्रण में लिए जाने के लिए उपबंध करने का संविधान सभा का आशय निरर्थक हो जाता है और उससे किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती है। इसके अतिरिक्त, नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 के अंतर्गत, जो स्वीकृततः अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास के लिए प्रविष्टि 56 के अधीन अधिनियमित किया गया है अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के जलों के उपयोग, वितरण और प्रभाजन का क्षेत्र भी आता है। इससे यह दर्शित होता है कि प्रविष्टि 56 में "अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास" पद का विधायी रूप से भी इस प्रकार अर्थान्वयन किया गया है कि उसके अंतर्गत तटवर्ती राज्यों के बीच अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के जलों का उपयोग, वितरण और प्रभाजन भी आता है। हमारा यह भी मत है कि प्रविष्टि 17 के प्रवर्तन को राज्य की सीमाओं के अन्दर अन्तराज्यिक नदी और नदी-घाटियों के जलों तक सीमित रखने और राज्य विधानमण्डल की, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, उसके राज्यक्षेत्र से परे ऐसी नदी या नदी-घाटी के जलों के उपयोग, वितरण और प्रभाजन में हस्तक्षेप करने या उसे प्रभावित करने या उसे विस्तारित करने के लिए सक्षमता का प्रत्याख्यान करने के लिए, अविशिष्टीय प्रविष्टि 97 का अवलम्ब लेना आवश्यक नहीं है, क्योंकि प्रविष्टि 56 के अधीन समुचित घोषणा पर्याप्त होगी। हमारे जैसे परिसंघीय संविधान का आधार ऐसे निर्वचन को समादिष्ट करता है और वह इसके विपरीत निर्वचन को स्वीकार नहीं करेगा, जिससे स्वयं संविधान और सांविधानिक स्कीम ही नष्ट हो जाएगी। अतः यद्यपि तकनीकी रूप में अन्तरराज्यिक नदी और नदीघाटी के विनियमन और विकास को उसके जल के उपयोग, वितरण और प्रभाजन से पृथक् करना संभव है, तथापि ऐसा करना न तो उचित है और न आवश्यक ही।

70. सुसंगत विधिक उपबंधों के उपर्युक्त विश्लेषण से, जो अन्तरराज्यिक नदियों और नदी-घाटियों और उनके जलों के संबंध में है, यह दर्शित होता है कि अधिनियम, अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 केवल संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन ही अधिनियमित किया जा सकता है और किया भी गया है। वह प्रविष्टि 56 के अधीन अधिनियमित नहीं किया गया है, क्योंकि वह विवादों के न्यायनिर्णयन के संबंध में है और समग्रतः अन्तरराज्यिक नदी या उसके जलों का कोई अन्य पहलू उससे सम्बद्ध नहीं है।

71. इस प्रक्रम पर अन्तरराज्यिक नदी जल और उसके लिए तटवर्ती राज्यों के अधिकारों के बारे में सही विधिक स्थिति का उल्लेख भी उचित होगा। स्टेट आफ कंसाज बनाम स्टेट आफ कोलोरेडो[1] वाले मामले में संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने इस संबंध में यह मत व्यक्त किया है—

[1] (206) यू० एस० 46.

1991(11) eILR(PAT) SC 16

"विभिन्न राज्यों के एक दूसरे के प्रति संबंधों में अन्तर्निहित एक मुख्य नियम अधिकार की समता का नियम है। प्रत्येक राज्य शेष राज्यों के साथ समान स्तर पर स्थित है। वह अन्य राज्यों में से किसी राज्य पर स्वयं अपना विधान अधि-रोपित नहीं कर सकता है और वह किसी भी राज्य के समक्ष स्वयं अपना मत व्यक्त करने के लिए आबद्ध नहीं है"।

"......एक राज्य की कार्रवाई, नैसर्गिक विधियों के अभिकरण द्वारा, अन्य राज्य के राज्यक्षेत्र तक पहुंचती है, दोनों राज्यों के अधिकारों के विस्तार और सीमा का प्रश्न उनके बीच न्याय्य विवाद का विषय हो जाता है..., इस न्यायालय से उक्त विवाद का ऐसी रीति में निपटारा करने की अपेक्षा की जाती है, जो दोनों के समान अधिकारों को मान्यता प्रदान करेगी और उसके साथ ही दोनों के बीच न्याय स्थापित करेगी।"

"विवाद न्याय्य प्रकृति का है, जिसका अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णयन किया जाना है, और वह एक राज्य की विधायी अधिकारिता का विषय नहीं है..."

"प्रवहमान (बहने वाले) जल का अधिकार भूमि में सम्पत्ति के आनुषंगिक अधिकार के रूप में अब सुस्थापित है; यह अधिकार लोक अधिकार (पब्लिकी जूरिस) है और इस प्रकार का है कि (यद्यपि) वह ऐसे सभी व्यक्तियों के लिए सामान्य और समान रूप से उपलब्ध है, जिनकी भूमि से होकर वह जाता है और कोई भी व्यक्ति उसमें बाधा नहीं डाल सकता है या उसकी दिशा को मोड़ नहीं सकता है, तथापि प्रकृति के लाभप्रद दोनों में से एक दान के रूप में प्रत्येक स्वत्व-धारी को उसके न्यायसंगत और युक्तियुक्त उपयोग का अधिकार है, क्योंकि वह उसकी भूमि से होकर जाता है, और जब तक उसमें पूर्णतः बाधा नहीं डाली जाती है या उसकी दिशा मोड़ी नहीं जाती है, या उसमें से होकर जाने वाले जल का, न्यायसंगत और युक्तियुक्त उपयोग से बड़ा विनियोजन नहीं किया जाता है, तो उसे निचले भाग के स्वत्वधारी को हानिकर या सदोष नहीं कहा जा सकता है।"

"बहने वाले जल के उपयोग का अधिकार लोक अधिकार (पब्लिकी जूरिस) है और वह सभी तटवर्ती स्वत्वधारियों के लिए सामान्य रूप से उपलब्ध है; वह उनकी भूमि से बहने वाले संपूर्ण जल का आत्यंतिक और अनन्य अधिकार नहीं है, जिससे कि किसी भी प्रकार की बाधा वादहेतुक को जन्म देगी; किन्तु वह प्रकृति के उस दान के युक्तियुक्त उपभोग के लिए सभी स्वत्वधारियों में समान अधिकार के अधीन रहते हुए, जल के प्रवाह और उपभोग का अधिकार है। अतः यह अधिकार केवल जल के निकाले जाने के लिए है और इस सामान्य फायदे से वंचित करने के लिए या उसके अयुक्तियुक्त और अनधिकृत उपयोग के लिए कार्रवाई होगी।"

72. यद्यपि अन्तरराज्यिक नदी के जल तटवर्ती राज्यों के राज्यक्षेत्रों से होकर जाते हैं, तथापि ऐसे जल किसी राज्य में स्थित नहीं माने जा सकते हैं। वे प्रवाह की स्थिति में रहते हैं और कोई भी राज्य ऐसे जलों के अनन्य स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता है,

जिससे कि अन्य राज्यों को उनके साम्यापूर्ण अंश से वंचित किया जा सके। अत: ऐसे जलों की बाबत, कोई भी राज्य ऐसे जलों के उपयोग के लिए प्रभावी रूप से विधान नहीं बना सकता है क्योंकि उसकी विधायी शक्ति उसके राज्यक्षेत्रों से परे नहीं जाती है। इसके अतिरिक्त, तटवर्ती राज्यों के बीच जलों के वितरण और प्रभाजन का यह अभिस्वीकृत सिद्धांत है कि ऐसा प्रत्येक राज्य के साम्यापूर्ण अंश के आधार पर किया जाना है। यह प्रश्न कि साम्यापूर्ण अंश क्या होगा, प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। इन्हीं सिद्धांतों और विधि के उपबंधों की पृष्ठभूमि में, जिनका हम पहले ही विवेचन कर (विचार-विमर्श) चुके हैं, हमें पक्षकारों की संबंधित दलीलों पर विचार करना है।

73. अध्यादेश असंवैधानिक है क्योंकि उससे केंद्रीय अधिनियम, अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम के अधीन नियुक्त अधिकरण की अधिकारिता प्रभावित होती है, जो विधान संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन बनाया गया है। अध्यादेश के उपबंधों का विश्लेषण करने से यह प्रकट हो जाता है कि जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया जा चुका है, उसका स्पष्ट प्रयोजन तारीख 25 जून, 1991 को अधिकरण द्वारा पारित अन्तरिम आदेश के प्रभाव को अकृत करना है। अध्यादेश द्वारा उक्त तथ्य को रहस्य नहीं बनाया गया है और फाइल किए गए लिखित कथन तथा कर्नाटक राज्य की ओर से किए गए निवेदनों से यह दर्शित होता है कि (चूंकि) कर्नाटक राज्य के अनुसार, अधिकरण को कोई अन्तरिम आदेश पारित करने या कोई अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है, जैसा कि उसने तारीख 25 जून, 1991 के आदेश द्वारा किया है, अत: उक्त आदेश अधिकारिता-रहित है और इसलिए आदित: शून्य है। ऐसी स्थिति में वह, कर्नाटक के अनुसार, धारा 6 के अर्थान्तर्गत विनिश्चय नहीं है और उसके लिए आबद्धकर नहीं है तथा उक्त आदेश के संभावित प्रभावों के विरुद्ध अपना संरक्षण करने के लिए, अध्यादेश जारी किया गया था। इस प्रकार कर्नाटक राज्य ने अनाधिकार चेष्टा करते हुए एकपक्षीय रूप से यह विनिश्चय करने की शक्ति स्वयं अपने हाथ में ले ली है कि क्या अधिकरण को अन्तरिम आदेश पारित करने की अधिकारिता प्राप्त है या नहीं और क्या उक्त आदेश उसके लिए आबद्धकर है या नहीं। दूसरे, राज्य ने यह उपधारणा भी की है कि जब तक अधिकरण द्वारा अंतिम आदेश पारित नहीं किया जाता है, राज्य को, निम्नतर तटवर्ती राज्यों पर ऐसी कार्यवाही के परिणामों से अनभिज्ञ और असम्बद्ध रहते हुए, स्वयं अपने लिए कावेरी नदी के जलों का विनियोजन करने की शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार कर्नाटक ने यह उपधारणा की है कि उसे उक्त जलों की बाबत बेहतर अधिकार प्राप्त हैं और वह उनके विषय में किसी भी रीति में कार्यवाही कर सकता है। इस प्रक्रिया में, कर्नाटक राज्य ने यह उपधारणा भी की है कि निम्नतर तटवर्ती राज्यों को कोई साम्यापूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं है और वह उक्त जलों में अन्य तटवर्ती राज्यों के अंश का एकमात्र निर्णायक है। इसके अतिरिक्त कर्नाटक राज्य ने स्वयं अपने ही वाद में निर्णायक की भूमिका धारित कर (अपना) ली है। इस प्रकार इस तथ्य के अतिरिक्त कि अध्यादेश द्वारा तारीख 25 जून, 1991 के अधिकरण के विनिश्चय को प्रत्यक्ष रूप से अकृत किया गया है, उसके द्वारा इस न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के विनिश्चय को भी चुनौती दी गई है, जिसमें यह विनिर्णय किया गया है कि अधिकरण को अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने के प्रश्न पर विचार करने की शक्ति प्राप्त है, क्योंकि वह उसे विनिर्दिष्ट रूप से निर्देशित किया गया था। इसके अतिरिक्त अध्यादेश का

1991(11) eILR(PAT) SC 1

क्षेत्रातीत प्रवर्तन भी है, क्योंकि उसके द्वारा कावेरी नदी के जलों की बाबत तमिलनाडु और पाण्डिचेरी के साम्यापूर्ण अधिकारों में हस्तक्षेप किया गया है। उस सीमा तक, जिस तक अध्यादेश द्वारा इस न्यायालय के और केन्द्रीय विधान के अधीन नियुक्त अधिकरण के विनिश्चय में हस्तक्षेप किया गया है, वह स्पष्टतः असंवैधानिक है, क्योंकि वह न केवल संविधान के अनुच्छेद 262 के उपबंधों के प्रत्यक्ष विरोध में है, जिसके अधीन उक्त अधिनियमिति बनाई गई है, बल्कि वह राज्य की न्यायिक शक्ति के विरोध में भी है।

'74. इस संबंध में हम अहमदाबाद नगर निगम आदि बनाम न्यू श्राक स्पिनिंग एण्ड वीविंग कंपनी लि० आदि[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रति निर्देश करना उचित समझते हैं। उक्त मामले के तथ्य इस प्रकार थे—उच्च न्यायालय और इस न्यायालय ने भी यह अभिनिर्धारित किया था कि अहमदाबाद नगर निगम द्वारा कतिपय वर्षों के लिए संगृहीत संपत्तिकर अवैध था। उक्त विनिश्चय के प्रभाव को अकृत करने के उद्देश्य से, राज्य सरकार ने मुम्बई प्रान्तीय नगर निगम अधिनियम (बोम्बे प्रोविंशियल म्युनिसिपल कार्पोरेशन ऐक्ट) में संशोधन द्वारा धारा 152क जोड़ी, जिसका आशय (प्रभाव) नगर निगम को, इस न्यायालय और उच्च न्यायायालय के आदेशों के बावजूद, अवैध रूप में संगृहीत रकम का प्रतिदाय करने से इनकार करने के लिए समादेश देना था। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त उपबंध द्वारा राज्य की न्यायिक शक्तियों का प्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन किया गया है। संविधान के अधीन विधान-मण्डलों को, विहित सीमाओं के अन्दर, भूतलक्षी प्रभाव से और भविष्यलक्षी प्रभाव से भी विधियां बनाने की शक्ति प्राप्त है। इन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, विधान-मण्डल सक्षम न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय के आधार को दूर कर कर सकता है और इस प्रकार विनिश्चय को निष्प्रभाव कर सकता है। किंतु देश के किसी भी विधान-मण्डल को राज्य के अभिकरणों से न्यायालयों द्वारा किए गए विनिश्चयों की अवज्ञा या उपेक्षा करने के लिए कहने की शक्ति प्राप्त नहीं है। परिणामतः, धारा 152क की उपधारा (3) के उपबंध संविधान के विरुद्ध माने गए और इसलिए विखंडित कर दिए गए। मदन मोहन पाठक बनाम भारत संघ और अन्य[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा किया गया एक अन्य विनिश्चय भी इसी आशय का है। इस मामले में जीवन बीमा निगम और उसके कर्मचारियों के बीच किया गया समझौता कलकत्ता उच्च न्यायालय के विनिश्चय का आधार बना था। निगम द्वारा इस समझौते को इस आधार पर निष्प्रभाव करने का प्रयास किया गया कि उसे केन्द्रीय सरकार से ये अनुदेश (हिदायतें) प्राप्त हुए थे कि सरकार के अनुमोदन के बिना, निगम द्वारा अपने कर्मचारियों को बोनस का संदाय नहीं दिया जाना चाहिए। अतः कर्मचारियों ने उच्च न्यायालय में समावेदन किया और उच्च न्यायालय ने याचिका मंजूर की। उसके विरुद्ध लैटर्स पेटेंट अपील फाइल की गई और जब वह लंबित थीं, (तब) संसद ने जीवन बीमा (समझौते का उपान्तरण) अधिनिनियम, 1976 पारित किया, जिसका आशय समझौते के निबन्धनों और उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के विनिश्चयों के अनुसार कर्मचारियों को संदेय बोनस से वंचित करना था। अधिनियम के इस संशोधन पर, निगम ने अपनी अपील वापस ले ली और बोनस का संदाय

[1] [1975] 3 उम० नि० प० [1097]=1971 1 एस० सी० आर० 288.

[2] [1979] 1 उम० नि० प० [1252]=1978 3 एस० सी० आर० 3341.

करने से इनकार कर दिया। चूंकि कर्मचारियों ने उक्त विधान की सांविधानिक वैधता को चुनौती देते हुए, इस न्यायालय में समावेदन किया था, अतः न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे समझौते को, जो उच्च न्यायालय के विनिश्चय का आधार बन चुका था, अकृत करने के लिए विधायी प्रक्रिया अपनाना अनुचित होगा। यदि विधान द्वारा विनिश्चय के आधार को दूर किया भी जा सकता है, तब भी ऐसा उसे वर्ग के साधारण अधिकारों में परिवर्तन द्वारा करना होता है, न कि मात्र विनिर्दिष्ट समझौते को अपवर्जित करके, जो उच्च न्यायालय द्वारा विधिमान्य और प्रवर्तनीय माना गया था। वस्तुतः अधिनियम का उद्देश्य उच्च न्यायालय के न्यायालय के निर्णय को निष्प्रभाव करना था। निर्णय के अधीन अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19 से स्वतंत्र रूप में उद्भूत कहे जाएंगे।

75. इस विषय पर इस न्यायालय का एक अन्य विनिश्चय पी० सांबमूर्ति और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य[1] वाले मामले में किया गया विनिश्चय है। इस मामले में संविधान के अनुच्छेद 371घ के अन्तःस्थापन को चुनौती दी गई। उक्त अनुच्छेद के खण्ड 5 में यह उपबंध किया गया कि प्रशासनिक अधिकरण का किसी मामले को अन्तिम रूप से निपटाने वाला आदेश राज्य सरकार द्वारा उसकी पुष्टि किए जाने पर या आदेश किए जाने की तारीख से तीन मास की समाप्ति पर, इनमें से जो भी पहले हो, प्रभावी हो जाएगा। उक्त खण्ड के परन्तुक में यह उपबंध किया गया कि राज्य सरकार विशेष आदेश द्वारा, जो लिखित रूप में किया जाएगा और जिसमें उसके लिए जो कारण है वे विनिर्दिष्ट किए जाएंगे, प्रशासनिक अधिकरण के किसी आदेश को उसके प्रभावी होने से पहले उपान्तरित या रद्द कर सकेगी और ऐसे मामले में प्रशासनिक अधिकरण का आदेश, यथास्थिति, ऐसे, उपान्तरित रूप में ही प्रभावी होगा या वह निष्प्रभाव हो जाएगा। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विधि सम्मत शासन का यह आधारभूत सिद्धांत है कि कार्यपालक या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा शक्ति का प्रयोग न केवल संविधान के अनुरूप होना चाहिए बल्कि वह विधि के अनुसार भी होना चाहिए और संविधान द्वारा यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त की गई कि विधि का पालन किया जाता है और कार्यपालक तथा अन्य प्राधिकारियों की ओर से विधि की अध्यपेक्षा का अनुपालन किया जाता है। उच्च न्यायालय जैसे स्वतंत्र संस्थागत प्राधिकारी/प्राधिकरण को प्रदत्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति द्वारा ही विधि सम्मत शासन कायम रखा जाता है और राज्य का प्रत्येक अंग विधि की सीमाओं के अन्दर रखा जाता है। यदि राज्य सरकार, उसके विरुद्ध किए गए विनिश्चय को निष्प्रभाव अकृत करके न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग को अकृत कर सकती है, तो इससे विधिसम्मत शासन का अन्त ही हो जाएगा। ऐसी स्थिति में विधिसम्मत शासन निरर्थक हो जाएगा, क्योंकि राज्य सरकार को विधि की अवज्ञा करने की खुली छूट मिल जाएगी। अतः अनुच्छेद 371घ के खण्ड 5 के परन्तुक से आधारभूत ढांचा सिद्धांत का उल्लंघन होता था।

76. इन नजीरों से जो सिद्धांत सामने आता है वह यह है कि विधान मण्डल उस आधार में परिवर्तन कर सकता है जिस पर न्यायालय द्वारा विनिश्चय किया गया है और

[1] [1987] 2 उम० नि० प० 743=[1987] 1 एस० सी० आर० 879.

इस प्रकार वह सामान्यतः विधि में परिवर्तन कर सकता है, जो व्यक्तियों के एक वर्ग और सामान्य घटनाओं को प्रभावित करेगी। तथापि, वह पक्षकारों के बीच व्यक्तिगत विनिश्चय को अपास्त नहीं कर सकता है और केवल उनके अधिकारों, दायित्वों को प्रभावित नहीं कर सकता है। विधान मण्डल का ऐसा कार्य राज्य की न्यायिक शक्ति को प्रयोग करने और अपील न्यायालय या अधिकरण के रूप में कृत्य करने की कोटि में आता है।

77. संविधान के अनुच्छेद 262 के साथ पठित, वर्तमान अधिनियम अर्थात् अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम की धारा 11 के उपबंधों का प्रभाव यह है कि राज्य की, और इसलिए उच्चतम न्यायालय सहित सभी न्यायालयों की, किसी अन्तरराज्यिक नदी या नदी घाटियों के जल का उपयोग, वितरण या नियंत्रण की बाबत मूल विवाद या परिवाद का न्यायनिर्णयन करने की संपूर्ण न्यायिक शक्ति उक्त अधिनियम की धारा 4 के अधीन नियुक्त अधिकरण में निहित की गई है। अतः यह निवेदन स्वीकार करना संभव नहीं है कि अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने का प्रश्न उक्त उपबंधों की परिधि के बाहर है और वह संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन उठाया जा सकता है। अतः राज्य का कोई भी कार्यपालक आदेश या विधायी अधिनियमिति, जो न्यायनिर्णयन प्रक्रिया और ऐसे अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णयन में हस्तक्षेप करती है, राज्य की न्यायिक शक्ति में हस्तक्षेप है। इस तथ्य को देखते हुए कि प्रश्नगत अध्यादेश द्वारा तारीख 25 जून, 1991 को अधिकरण द्वारा पारित आदेश का प्रत्यक्ष रूप से अकृत किया जाना ईप्सित है, वह राज्य की न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण करता है और इसलिए वह संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य (बाहर) है।

78. इसके अतिरिक्त, स्वीकृततः, अध्यादेश का प्रभाव तमिलनाडु और पाण्डिचेरी राज्य क्षेत्र में कावेरी नदी के जल के प्रवाह को प्रभावित करना है, जो निचले (निम्नतर) तटवर्ती राज्य हैं। अतः अध्यादेश का राज्यक्षेत्रातीत प्रवर्तन है। अतः उस आधार पर अध्यादेश राज्य की विधायी सक्षमता से परे हैं और संविधान के अनुच्छेद 245 (1) के उपबंधों द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य (बाहर) है।

79. अध्यादेश विधिसम्मत शासन के आधारभूत सिद्धांतों के भी विरुद्ध है क्योंकि कर्नाटक राज्य ने अध्यादेश जारी करके विधि को स्वयं अपने हाथ में लेने और विधि से ऊपर होने का प्रयास किया है। ऐसा कार्य अव्यवस्था और अराजकता को निमन्त्रण है क्योंकि यह अध्यादेश राज्य की ओर से स्वयं अपने ही वाद में न्यायाधीश होने और न्यायिक प्राधिकरणों के विनिश्चयों की अवज्ञा करने की इच्छा का प्रकटीकरण है। यह कार्यवाही संविधान के अधीन संघीय ढांचे के लिए बुरे परिणामों की पूर्व सूचक है और न केवल अन्य राज्यों के अधिकारों, संसद के अधिनियम के अधीन गठित अभिकरणों द्वारा पारित आदेशों, बल्कि संविधान के उपबंधों की भी उपेक्षा करते हुए, स्वेच्छानुसार कार्य करने के लिए प्रत्येक राज्य के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। यदि ऐसा अध्यादेश जारी करने की राज्य की शक्ति को मान्यता दे दी जाती है, तो उसके परिणामस्वरूप सांविधानिक मशीनरी भंग हो जाएगी और राष्ट्र की एकता और अखण्डता प्रभावित होगी।

80. अध्यादेश की असंवैधानिकता पर हमारे उपर्युक्त मत को देखते हुए, हमारे

लिए तमिलनाडु और पाण्डिचेरी की ओर से दी गई इस दलील पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि अध्यादेश इसलिए भी असंवैधानिक है कि वह नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 के उपबंधों के विरुद्ध है, जो स्वीकृततः प्रविष्टि 56 के अधीन अधिनियमित किया गया है।

81. हमारा संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) और 21 के संबंध में दोनों पक्षों की ओर से दी गई दलीलों पर भी विचार करने का इरादा नहीं है। कर्नाटक की ओर से यह दलील देते हुए अध्यादेश का समर्थन करने के लिए उक्त अनुच्छेदों का अवलंब लिया गया है कि अध्यादेश कर्नाटक के निवासियों के मूल अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए जारी किया गया है, जो उन्हें उक्त अनुच्छेदों द्वारा गारण्टीकृत किए गए हैं और जिन अधिकारों से अधिकरण के तारीख 25 जून, 1991 के आदेश द्वारा उन्हें अन्यथा वंचित किया गया था। इसके विपरीत, तमिलनाडु की ओर से यह दलील दी गई कि अध्यादेश उसके निवासियों को उक्त अधिकारों से वंचित करने के लिए आशयित था। दोनों पक्षों की ओर से दी गई दलीलों में यह उपधारणा अन्तर्निहित है कि अधिकरण के आदेश द्वारा कर्नाटक को नदी जल में साम्यापूर्ण अंश से वंचित किया गया है और वह तमिलनाडु के लिए सुनिश्चित किया गया है। अतः उक्त दलीलों पर विचार करने का अर्थ उक्त आदेश के ताथ्यिक गुणागुणों पर विचार करना है, जो काम हमारा नहीं है। कर्नाटक की ओर से दी गई यह दलील भी इसी प्रकार की है कि आदेश द्वारा तमिलनाडु के पक्ष में नए अधिकार सर्जित किए गए हैं और उसके परिणामस्वरूप, जहां तक कर्नाटक का संबंध है, असाम्यापूर्ण परिणाम सामने आएंगे। उन्हीं कारणों से हम इन दलीलों पर भी विचार नहीं कर सकते हैं।

प्रश्न सं० 3

82. प्रश्न सं० 3, प्रश्न सं० 2 से गहन रूप से संबद्ध है। तथापि, स्वयं प्रश्न सं० 3 का दो भागों में उत्तर दिया जाना है, अर्थात् क्या अधिनियम के अधीन गठित जल विवाद अधिकरण कोई अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए सक्षम है, (i) जब अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अधिकरण को कोई निर्देश नहीं किया जाता है; और (ii) जब उसे ऐसा निर्देश किया जाता है। कर्नाटक और केरल की ओर से यह दलील दी गई कि प्रश्न के द्वितीय भाग का उत्तर भी प्रथम भाग के उत्तर पर निर्भर करेगा। क्योंकि यदि अधिकरण को अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है तो केन्द्रीय सरकार तत्प्रयोजनार्थ निर्देश करने के लिए अक्षम होगी और अधिकरण को भी ऐसा निर्देश विचारार्थ ग्रहण करने की कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं होगी, यदि वह किया भी जाता है और यदि अधिकरण को अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने की शक्ति प्राप्त नहीं है तो अधिकरण द्वारा किया गया आदेश धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय गठित नहीं करेगा और इसलिए उसका अधिनियम की धारा 6 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित किया जाना आवश्यक नहीं होगा, जिससे कि उसे प्रभावी बनाया जा सके। इसके अतिरिक्त यदि अधिकरण को अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने की ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं है तो अधिकरण द्वारा तारीख 25 जून, 1991 को पारित आदेश अधिकारिता रहित होने के कारण शून्य होगा और इसलिए उस सीमा तक कर्नाटक राज्य द्वारा जारी किया गया अध्यादेश अधिनियम, अर्थात् अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 के उपबंधों के विरुद्ध नहीं होगा।

83. जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस न्यायालय ने तारीख 26 जुलाई, 1991 के अपने विनिश्चय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया है कि केन्द्रीय सरकार ने तमिलनाडु राज्य द्वारा यथाप्रार्थित अंतरिम अनुतोष के दावे पर विचार करने के लिए अधिकरण को निर्देश किया था और इसलिए अधिकरण को, स्वयं निर्देश का भाग होने के कारण उक्त अनुरोध पर विचार करने के लिए अधिकारिता प्राप्त थीं। उक्त विनिश्चय में यह निष्कर्ष विवक्षित है कि अंतरिम अनुतोष का विषय अधिनियम की धारा 5(1) के अर्थान्तर्गत जल-विवाद से संबद्ध या संगत है। अतः केन्द्रीय सरकार, न्यायनिर्णयन हेतु, अधिकरण को अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने का मामला निर्देशित कर सकती थी। यद्यपि इस न्यायालय ने उक्त विनिश्चय द्वारा इस प्रश्न को खुला रखा है कि क्या अधिकरण को उस स्थिति में अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने की आनुषंगिक, प्रासंगिक, अन्तर्निहित या विवक्षित शक्ति प्राप्त है, जब ऐसा अनुतोष अनुदत्त किए जाने के लिए उसे कोई निर्देश नहीं किया जाता है, तथापि उसने प्रश्न के द्वितीत भाग का स्पष्ट शब्दों में निपटारा कर दिया है। अतः हम ऐसी स्थिति का समर्थन नहीं कर सकते हैं, जिसके द्वारा प्रश्न सं० 3 और तत्प्रयोजनार्थ प्रश्न सं० 1 और 2 का इस प्रकार अर्थान्वयन किया जा सके जिससे कि इस न्यायालय के उक्त विनिश्चय पर हमारी राय आमन्त्रित की (मांगी) जा सके। स्पष्टतः ऐसा करने का अर्थ उक्त विनिश्चय पर अपील में सुनवाई करना होगा, जो न्यायनिर्णयन अधिकारिता में भी हमारे लिए अननुज्ञेय होगा और न राष्ट्रपति के लिए ही संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन निर्देश के माध्यम से उक्त विनिश्चय पर अपीलीय अधिकारिता हममें विनिहित करना सक्षम होगा।

84. किन्तु श्री नरीमन ने यह दलील दी कि राष्ट्रपति अनुच्छेद 143 के अधीन विधि का कोई भी प्रश्न निर्देशित कर सकते हैं और इसलिए वह इस न्यायालय से अपने किसी विनिश्चय पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए उन्होंने अनुच्छेद 143 के खण्ड (1) की भाषा का अवलंब लिया, जो इस प्रकार है :—

> "143. उच्चतम न्यायालय से परामर्श करने की राष्ट्रपति की शक्ति—(1) यदि किसी समय राष्ट्रपति को प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है, जो ऐसी प्रकृति का और ऐसे सार्वजनिक महत्व का है कि उस पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन है तो वह उस प्रश्न को विचार करने के लिए उस न्यायालय को निर्देशित कर सकेगा और वह न्यायालय, ऐसी सुनवाई के पश्चात् जो वह ठीक समझे राष्ट्रपति को उस पर अपनी राय के बारे में रिपोर्ट दे सकेगा।"

85. अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने हमारे समक्ष दिल्ली विधि अधिनियम, 1912 और अजमेर-मेरूवाड़ (विधि विस्तार) अधिनियम, 1947 और भाग ग राज्य (विधि) अधिनियम, 1955 वाले मामले[1] में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त राय के प्रति निर्देश भी किया। उन कारणों से, जिन्हें हम बाद में देंगे, हम इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। प्रथमतः, अनुच्छेद 143 के खण्ड (1) की भाषा, श्री नरीमन की दलील का समर्थन करने के बजाय, उसके विरुद्ध है। उक्त खण्ड द्वारा राष्ट्रपति को विधि या तथ्य के

[1] (1951) एस० सी० आर० 747.

प्रश्न को इस न्यायालय की राय हेतु निर्देशित करने के लिए सशक्त किया गया है; जो उत्पन्न हुआ है या जिसके उत्पन्न होने की संभावना है। जब यह न्यायालय अपनी न्याय-निर्णयन-अधिकारिता में विधि के किसी प्रश्न पर अपनी प्रामाणिक राय व्यक्त करता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि विधि के प्रश्न के बारे में कोई सन्देह है या वह अनिर्णीत विषय है, जिससे कि राष्ट्रपति के लिए यह जानना आवश्यक हो कि उस प्रश्न पर विधि की सही स्थिति क्या है। विधि के प्रश्न पर इस न्यायालय का विनिश्चय सभी न्यायालयों और प्राधिकरणों (प्राधिकारियों) के लिए आबद्धकर है। अतः उक्त खण्ड के अधीन राष्ट्रपति केवल उस स्थिति में ही विधि के प्रश्न को निर्देशित कर सकते हैं, जब इस न्यायालय ने उसका विनिश्चय नहीं किया हो। दूसरे, इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय का केवल उच्चतम न्यायालय नियमावली, 1966 के आदेश 40 के नियम 1 के साथ पठित, अनुच्छेद 137 के अधीन और उसमें वर्णित शर्तों पर ही पुनर्विलोकन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, जब यह न्यायालय किसी पूर्वतर मामले में स्वयं द्वारा व्यक्त विधि के मत को उलट देता है, तो वह ऐसा पूर्वतर विनिश्चय पर अपीली अधिकारिता का प्रयोग करते हुए और अपील में सुनवाई करते हुए ऐसा नहीं करता है। वह ऐसा अपनी अन्तर्निहित शक्ति के प्रयोग में और केवल आपवादिक परिस्थितियों में ही करता है, जैसे कि, जब पूर्वतर विनिश्चय अनवधानता के कारण किया गया है या वह सुसंगत या तात्विक तथ्यों के अभाव में किया गया है या यदि वह प्रकटतः गलत है और लोक रिष्टि को जन्म देने वाला है (देखें दि बंगाल इम्युनिटी कं० लि० बनाम बिहार राज्य और अन्य[1] वाला मामला)। संविधान के अधीन ऐसी अपीली अधिकारिता इस न्यायालय में निहित नहीं है; और न वह राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 143 के अधीन उसमें निहित ही की जा सकती है। श्री नरीमन की दलील को स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि अनुच्छेद 143 के अधीन परामर्श-अधिकारिता भी इस न्यायालय की उन्हीं पक्षकारों के बीच स्वयं अपने विनिश्चय पर अपीली अधिकारिता है और कार्यपालिका को इस न्यायालय से अपने विनिचय को पुनरीक्षित करने के लिए कहने की शक्ति प्राप्त है। यदि अनुच्छेद 143 में ऐसी शक्ति पढ़ी जाती है, तो ऐसा करना न्यायपालिका की स्वतंत्रता का घोर उल्लंघन होगा।

86. जहां तक ऊपर निर्दिष्ट दिल्ली विधि अधिनियम, 1912 वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त राय का संबंध है, जैसा कि स्वयं निर्देश में स्पष्ट किया गया है, जतीन्द्र नाथ गुप्त बनाम बिहार प्रांत और अन्य[2] वाले मामले में परिसंघीय न्यायालय (फेडरल कोर्ट) के विनिश्चय पर राष्ट्रपति द्वारा व्यक्त संदेह निर्देशित किया गया था, जो निर्णय (विनिश्चय) तारीख 20 मई, 1949 को दिया गया था। उस समय परिसंघीय न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय नहीं था। 10 अक्तूबर, 1949 तक, उसके विनिश्चयों के विरुद्ध अपीलें प्रिवी कौंसिल को होती थीं, जिनमें प्रश्नगत विनिश्चय के विरुद्ध अपील भी सम्मिलित है। परिसंघीय न्यायालय के विनिश्चय उच्चतम न्यायालय के लिए आबद्धकर नहीं थे, जैसा कि हरि विष्णु कामथ बनाम सैयद अहमद ईशाक और अन्य[3] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है। अतः यह ऐसा मामला नहीं था, जिसमें राष्ट्रपति ने इस

[1] (1955) 2 एस० सी० आर० 603.

[2] (1949) एफ० सी० आर० 595.

[3] (1955) 1 एस० सी० आर० 1104.

न्यायालय को, उसकी राय के लिए, ऐसा विनिश्चय निर्देशित किया था, जो देश की विधि बन गया था। अतः ऊपर निर्दिष्ट दिल्ली विधि अधिनियम, 1912 वाले मामले से उक्त दलील का समर्थन नहीं होता है।

87. संविधान के अनुच्छेद 374 के खण्ड (2) के उपबंधों से भी श्री नरीमन की दलील को सहायता नहीं मिलती है क्योंकि उक्त उपबंध संक्रमणकाल के संबंध में है और उसमें निर्दिष्ट परिसंघीय न्यायालय के निर्णय और आदेश स्पष्टतः संविधान के प्रारंभ पर परिसंघीय न्यायालय में लंबित वादों, अपीलों और कार्यवाहियों में अंतरिम निर्णय और आदेश हैं, जो तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय को अंतरित कर दिए गए। मुंबई राज्य बनाम गजानन महादेव बादले[1] वाले मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा भी यही मत व्यक्त किया गया है। दिल्ली न्यायिक सेवा संगम तीस हजारी कोर्ट, दिल्ली आदि बनाम गुजरात राज्य और अन्य[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने उक्त मत की पुष्टि की है। निर्णय के पैरा 32 से 37 में विनिर्दिष्ट रूप से इसी विषय पर विचार किया गया है।

88. श्री पाराशरन् और श्री वेणुगोपाल, दोनों ही, ने हम से प्रश्न सं० 3 के प्रथम भाग का इस आधार पर उत्तर न देने के लिए अनुरोध किया कि प्रश्न का उक्त भाग प्रकृति में पूर्णतः सैद्धांतिक और सामान्य है और उसके लिए दिया गया कोई भी उत्तर सैद्धांतिक ही होगा, क्योंकि इस निर्देश में कोई और अन्तरिम आदेश करने या कोई अन्य अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने का अवसर नहीं होगा। उनके अनुसार, निर्देश के आदेश में वर्णित बातों का केवल प्रश्न सं० 1 और 2 और प्रश्न सं० 3 के द्वितीय भाग से ही संबंध है। उनका प्रश्न सं० 3 के प्रथम भाग से कोई संबंध नहीं है और चूंकि निर्देश विशेष तथ्यों के संदर्भ में किया गया है, जिनका प्रश्न सं० 3 के सैद्धांतिक भाग से कोई संबंध नहीं है, अतः उसे तात्विक रूप से अनावश्यक होने के कारण अनुत्तरित ही वापस कर दिया जाना चाहिए।

89. तथापि, जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया जा चुका है, कर्नाटक और केरल राज्य की ओर से यह दलील दी गई कि हमें उसमें वर्णित कारणों से प्रश्न के उक्त भाग का उत्तर देना चाहिए। इस संबंध में श्री शांति भूषण ने ए० आर० अन्तुले बनाम आर० एस० नायक और एक अन्य[3] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया। उन्होंने यह उपदर्शित किया कि उक्त विनिश्चय द्वारा, अपने पूर्वतर विनिश्चय में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश अधिकारितारहित होने के कारण शून्य माने गए और वे अभिखंडित कर दिए गए। इस नजीर को देखते हुए, उन्होंने यह निवेदन किया कि इस न्यायालय को वैसा ही उपाय उपलब्ध है और इस न्यायालय द्वारा तारीख 26 अप्रैल, 1991 को किया गया विनिश्चय भी अधिकारितारहित और शून्य घोषित किया जाए। ऊपर निर्दिष्ट अंतुले वाले मामले में विनिर्दिष्ट रूप से दो प्रश्न उठाए गए, अर्थात् (i) क्या आर० एस० नायक बनाम ए० आर० अन्तुले[4] वाले मामले में (जिसे इसे इसमें इसके पश्चात् नायक वाला मामला कहा

---

[1] ए० आई० आर० 1954 मुम्बई 351.

[2] [1991] 4 उम० नि० प० 1252 (नवम्बर अंक)=जे० टी० 1991 (3) एस० सी० 617.

[3] [1988] 1 उम० नि० प० 1=[1988] सप्ली० 1 एस० सी० आर० 1.

[4] [1984] 3 उम० नि० प० 661=[1984] 2 एस० सी० आर० 495.

गया है) इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश, जिसमें बृहत्तर मुंबई के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में लंबित प्राइवेट व्यक्ति द्वारा फाइल किए गए परिवाद से उत्पन्न होने वाले विशेष मामला सं० 24/1982 और विशेष मामला सं० 3/1983 को वापस ले लिया गया था और उन्हें दण्ड विधि संशोधन अधिनियम, 1952 की धारा 7(1) के भंग में मुम्बई उच्च न्यायालय को अंतरित कर दिया गया था (जिस धारा द्वारा यह आदिष्ट किया गया है कि उक्त मामलों जैसे अपराधों का केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा ही विचारण किया जाएगा) और तद्द्वारा अपीलार्थी को कम से कम अपील के एक अधिकार से वंचित किया गया, संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन होता था, और क्या ऐसे निदेश विधिमान्य या वैध थे भी; और (ii) यदि ऐसे निदेश विधिमान्य और वैध नहीं थे, तो क्या इस न्यायालय द्वारा आदेश की विधिमान्यता को चुनौती देने वाली एक रिट याचिका में तारीख 17 अप्रैल, 1984 को पारित पश्चात्वर्ती आदेशों और नायक वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को देखते हुए, जिसके द्वारा इस न्यायालय ने समुचित पुनर्विलोकन याचिका के माध्यम से इस न्यायालय का अवलंब लेने या कोई अन्य आवेदन फाइल करने के याची के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जिसे फाइल करने के लिए वह विधि में हकदार हो, रिट याचिका खारिज कर दी थी, फाइल की गई अपील चलने योग्य थी और अपील के आधार न्याय्य थे। पश्चात्कथित प्रश्न को यह वर्णित करते हुए और आगे स्पष्ट किया गया कि प्रश्न यह था कि क्या पक्षकारों के बीच कार्यवाहियों में, नायक वाले मामले में दिए गए निदेश आबद्धकर थे, भले ही वे अविधिमान्य थे और उनसे संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन होता था। और इस प्रकार वे इस न्यायालय द्वारा शुद्धि से उन्मुक्त थे, यद्यपि उनसे प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था और क्षति कारित हुई थी। यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति (इजाजत) याचिका के माध्यम से उक्त कार्यवाहियां इस न्यायालय के समक्ष आई थी, जिन्हें नायक वाले मामले में दिए गए निदेशों के अनुसरण में उक्त मामला बाद में सौंपा गया। विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश द्वारा, अपीलार्थी के विरुद्ध 79 आरोप विरचित किए गए और यह विनिश्चय किया गया कि अन्य नामित सह-षड्यंत्रकारियों के विरुद्ध कार्यवाही न की जाए। उक्त आदेश को चुनौती देने के लिए फाइल की गई विशेष अनुमति (इजाजत) याचिका में दो प्रश्न, जिनका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, उठाए गए और अनुमति (इजाजत) प्रदान की गई। उक्त मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि (i) नायक वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों से इस न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं का उल्लंघन होता था, क्योंकि यह न्यायालय उच्च न्यायालय को अधिकारिता प्रदत्त नहीं कर सकता था, जो 1952 के दण्ड विधि संशोधन अधिनियम के उपबंधों के अधीन अनन्यतः विशेष न्यायाधीश में निहित थी; (ii) उक्त निदेशों द्वारा अपीलार्थी को संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के अधीन गारंटीकृत उसके मूल अधिकारों से वंचित किया गया क्योंकि अपीलार्थी के साथ अन्य अपराधियों से भिन्न रूप में व्यवहार किया गया और उसे उच्च न्यायालय को अपील करने के अधिकार से वंचित किया गया; (iii) 'दूसरे पक्षकार को भी सुनो' के सिद्धांत का अनुपालन किए बिना निदेश जारी किया गया; और (iv) विनिश्चय अनवधानता के कारण दिया गया था। श्री शांतिभूषण ने यह दलील दी कि (चूंकि) उक्त मामले में इस न्यायालय ने इस आधार पर स्वयं अपने पूर्वतर

निदेशों को अभिखंडित कर दिया था कि उच्च न्यायालय को अपराध का विचारण करने की कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं थी और यह न्यायालय उसे ऐसी अधिकारिता प्रदत्त नहीं कर सकता था, अतः वर्तमान मामले में भी न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के विनिश्चय की उपेक्षा की जा सकती है क्योंकि उसमें इस आधार पर कार्यवाही की गई थी कि अधिकरण को अंतरिम अनुतोष का आदेश पारित करने की अधिकारिता प्राप्त थी, जब कि उसे कोई ऐसी अधिकारिता प्राप्त ही नहीं थी।

90. हमें खेद है कि ऊपर निर्दिष्ट अंतुले वाले मामले के तथ्य असामान्य प्रकृति के हैं और उक्त विनिश्चिय को उन विशेष तथ्यों तक ही सीमित रखा जाना है। जैसा कि इस न्यायालय ने उक्त विनिश्चय में उपदर्शित किया है, प्रथमतः, वे निदेश, जो मामले को विशेष न्यायाधीश से वापस लेकर उच्च न्यायालय को अंतरिम किए जाने के लिए दिए गए थे, अपीलार्थी की सुनवाई किए बिना दिए गए थे। उक्त निदेशों द्वारा अपीलार्थी को उच्च न्यायालय में अपील के अधिकार से वंचित किया गया और इस प्रकार उनसे उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। अतः 'दूसरे पक्षकार को भी सुनो' के नियम का स्पष्ट भंग हुआ था। दूसरे आक्षेपित निदेश देते समय, न्यायालय ने यह अवेक्षा नहीं की थी कि 1952 वाले उक्त अधिनियम के अधीन विशेष न्यायाधीश को प्रश्नगत अपराध का विचारण करने के लिए अनन्य अधिकारिता प्राप्त थी और चूंकि यह एक विधायी उपबंध था, अतः यह न्यायालय उच्च न्यायालय को उक्त अधिकारिता प्रदत्त नहीं कर सकता था। न्यायालय ने यह भी उपदर्शित किया कि उस सीमा तक, जिस तक विशेष न्यायाधीश से मामला वापस ले लिया गया और उच्च न्यायालय को भेजा गया, अनुच्छेद 14 और 21 दोनों ही का उल्लंघन होता था। अपीलार्थी के साथ भेद-भाव बरता गया था और उसका अपील का अधिकार, जो अनुच्छेद 21 का एक भाग है, प्रभावित होता था। इस प्रकार यह प्रतीत होगा कि न केवल इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश अधिकारिता रहित थे, बल्कि वे अनवधानता के कारण भी (किए गए) थे और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के भंग में थे। उनसे अपीलार्थी के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के अधीन मूल अधिकार का भी उल्लंघन होता था। इस न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के विनिश्चय में उक्त दोषों में से कोई भी दोष नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता है कि इस न्यायालय ने अन्तर-राज्यिक जल विवाद अधिनियम के सुसंगत उपबंधों की अवेक्षा नहीं की थी। न्यायालय ने अधिनियम के सुसंगत तथ्यों का परिशीलन करने के पश्चात्, जो निस्सन्देह उसकी जानकारी में लाए गए, यह निष्कर्ष निकाला है कि अधिकरण को अंतरिम अनुदेश अनुदत्त करने की अधिकारिता प्राप्त थी, जब अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने वाला प्रश्न निर्देश का भाग था। आगे नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धांत या संविधान के किसी उपबंध का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। इस विनिश्चय से इस न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं का भी अतिक्रमण नहीं हुआ है। अतः हमारा यह मत है कि (चूंकि) उक्त विनिश्चय पक्षकारों के बीच विनिश्चय है, अतः वह उक्त मुद्दे पर पूर्व न्याय के रूप में प्रवर्तित होता है और उसे पुनः नहीं खोला जा सकता है। (उस पर नए सिरे से विचार नहीं किया जा सकता है।)

91. तथापि, हम इस दलील से सहमत हैं कि प्रश्न सं० 3 के प्रथम भाग का उत्तर देना आवश्यक नहीं है। उस संदर्भ से, जिसमें सभी प्रश्न हमें निर्देशित किए गए हैं, और निर्देश की उद्देशिका से पर्याप्त रूप से यह सिद्ध हो जाता है कि उक्त प्रश्न विशेष तथ्यों की पृष्ठभूमि में उठाए गए हैं। इन तथ्यों का प्रश्न सं० 3 के प्रथम भाग से कोई संबंध नहीं है, जो प्रकृति में सिद्धांतिक है। यह निष्कर्ष निकालना भी विधिसम्मत है कि प्रश्न का यह भाग सामान्य स्थितियों को सम्मिलित करने के लिए सैद्धांतिक उत्तर दिए जाने की आवश्यकता से प्रेरित नहीं था। प्रश्न के द्वितीय भाग के हमारे उत्तर से स्थिति की अत्यावश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए।

प्रश्न सं० 2

92. अब हम प्रश्न सं० 2 पर आते हैं। यद्यपि, यह प्रश्न दो भागों में विभाजित है, तथापि, दोनों भाग विषय के एक ही पहलू के संबंध में हैं क्योंकि प्रथम भाग के उत्तर से स्वतः, प्रश्न के द्वितीय भाग का उत्तर मिल जाएगा। प्रथम प्रश्न के समान ही यह स्थिति भी अधिकरण के तारीख 25 जून, 1991 के विनिर्दिष्ट आदेश से संबंधित है। अतः हमारी राय उक्त आदेश के विधिक गुणागुण पर दी जानी होगी।

93. धारा 5 की उपधारा (1) द्वारा केन्द्रीय सरकार को अधिकरण को न केवल मुख्य जल विवाद निर्देशित करने के लिए बल्कि उससे संबद्ध या उससे संगत प्रकट होने वाले किसी भी मामले को निर्देशित करने के लिए अभिव्यक्त रूप से सशक्त किया गया है। इस बारे में विवाद नहीं उठाया जा सकता है कि अंतरिम अनुतोष के लिए अनुरोध, चाहे वह आदेशात्मक निर्देश की प्रकृति का हो या प्रतिषेधात्मक आदेश की प्रकृति का, चाहे वह यथास्थिति बनाए रखे जाने के लिए हो या अत्यावश्यक (अर्जेंट) अनुतोष अनुदत्त किए जाने के लिए या अंतिम अनुतोष को निरर्थक बनाए जाने से बचाए जाने के लिए हो, मुख्य विवाद से संबंद्ध या उससे संगत मामला होगा। वस्तुतः इस न्यायालय ने तारीख 26 अप्रैल, 1991 के अपने उक्त विनिश्चय द्वारा स्पष्टतः यह अभिनिर्धारित किया है कि अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए तमिलनाडु राज्य का अनुरोध केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिकरण को निर्देशित किया गया था और उसने अधिकरण को उक्त अनुरोध पर गुणागुण के आधार पर विचार करने का निदेश किया था क्योंकि वह निदेश का भाग था। अतः अधिकरण का आदेश धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय होगा और इसलिए उसे प्रभावी बनाने के लिए, अधिनियम की धारा 6 के अधीन प्रकाशित किया जाना होगा।

94. इस संबंध में दी गई दलीलों में से एक दलील यह थी कि अधिकरण का तारीख 25 जून, 1991 का आदेश, रिपोर्ट और विनिश्चय होने के लिए तात्पर्यित नहीं है और वह इस रूप में वर्णित भी नहीं है। उसमें केवल यही कहा गया है कि वह आदेश है। दूसरे, उक्त आदेश अधिनियम की धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत 'रिपोर्ट और विनिश्चय नहीं हो सकता है, क्योंकि (i) अधिकरण विवाद के अंतिम न्यायनिर्णयन के पश्चात् ही रिपोर्ट दे सकता है और अन्वेषण के बिना कोई न्यायनिर्णयन नहीं हो सकता है। अन्तरिम अन्वेषण

और अन्तरिम निष्कर्ष तथा रिपोर्ट के लिए कोई उपबंध नहीं है; (ii) अधिकरण रिपोर्ट नहीं दे सकता था क्योंकि स्वयं उसके ही कथनानुसार, (क) अभिवचन पूर्ण नहीं थे, पक्षकारों ने अपने सभी दस्तावेज और कागज पत्र आदि अभी तक अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किए थे; (ख) मामलों का अन्वेषण नहीं किया गया था; अन्वेषण दस्तावेजों के प्रकटीकरण के पश्चात् ही किया जा सकता था और उसके पश्चात् ब्यौरेवार सुनवाई की जानी थी तथा पक्षकारों का साक्ष्य और बहस होनी थी और उसके पश्चात् नैसर्गिक न्याय के अनुरूप न्यायिक निष्कर्ष दिया जाना था; (ग) तकनीकी विषय का निर्धारण करने के लिए नियुक्त निर्धारकों (असेसरों) ने राज्य के इंजीनियरों से परामर्श के बिना अपनी कार्यवाहियां (संचालित) की। कभी-कभी कर्नाटक के इंजीनियरों के अभाव में, परामर्श के लिए तमिलनाडु के इंजीनियर बुलाए गए। असेसरों द्वारा दस्तावेजों और जानकारी का आहूत किया जाना भी आकस्मिक था और वह नैसर्गिक न्याय और ऋजु व्यवहार के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं था। असेसरों द्वारा अधिकरण के सदस्यों को दी गई सलाह की प्रति पक्षकारों को उपलब्ध नहीं कराई गई; (घ) अधिकरण ने यह कहा है "इस प्रक्रम पर यह अवधारित करना साध्य या युक्तियुक्त नहीं है कि अधिकतम संभव सीमा तक प्रत्येक राज्य की आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा किया जाए, जिससे कि दूसरों को कम से कम हानि हो"। ऐसा दृष्टिकोण अधिनियम द्वारा अनुध्यात अन्वेषण की संकल्पना के विरुद्ध है और इसलिए कोई आदेश करने से पूर्व ऐसे अन्वेषण पर, जो अधिनियम में अनुध्यात नहीं है, अन्तरिम अनुतोष के लिए कोई भी अंतरिम आदेश नहीं किया जा सकता था; (ii) केवल विनिश्चय का ही अधिकरण की रिपोर्ट से समर्थन होता है, और स्वयं यही रिपोर्ट पूर्ण और अंतिम अन्वेषण का परिणाम होनी चाहिए, जिसका अधिनियम की धारा 6 के अधीन प्रकाशित किया जाना आवश्यक है, न कि ऐसे आदेश का, जैसाकि अधिकरण द्वारा पारित किया गया है। वर्तमान आदेश न तो विनिश्चय है और न न्यायनिर्णयन ही, और इसलिए वह प्रकाशित नहीं किया जा सकता है।

95. यह दलील कि उक्त आदेश में यह नहीं कहा गया है कि वह रिपोर्ट और विनिश्चय है और इसलिए वह अधिनियम की धारा 5(2) के अधीन उस रूप में नहीं है, कम से कम हास्यास्पद तो कही ही जा सकती है। या तो आदेश अपनी अन्तर्वस्तुओं के कारण ऐसी रिपोर्ट और विनिश्चय है या है ही नहीं, यदि अन्तर्वस्तुओं से यह दर्शित नहीं होता है कि वह ऐसी रिपोर्ट है, तो वह इस कारण ऐसी रिपोर्ट नहीं हो जाएगी कि आदेश में ऐसा कहा गया है। जैसाकि पहले ही उपदर्शित किया जा चुका है, इसके कुछ पश्चात् ही आदेश की अन्तर्वस्तुओं से स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि वह धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय है।

96. पूर्वोक्त निवेदनों में से कुछ निवेदन पारित आदेश के गुणागुण और उसके परिणामों के संबंध में हैं, न कि अधिकरण की उक्त आदेश पारित करने की अधिकारिता और शक्ति के संबंध में। वर्तमान प्रश्न पर अपनी राय देते समय, हमारा संबंध आदेश के गुणागुण और इस प्रश्न से नहीं है कि अधिकरण के समक्ष पर्याप्त सामग्री थी या नहीं, क्या अधिकरण ने असेसर द्वारा दी गई सलाह की प्रतियां संबंधित पक्षकारों को दी थीं और

क्या उसने प्रश्नगत आदेश पारित करने से पूर्व उस पर उनकी सुनवाई की थी। जिस सीमित प्रश्न से हमारा यहां संबंध है, वह यह है कि क्या अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने वाला आदेश धारा 5(2) के अर्थान्तंगत रिपोर्ट और विनिश्चय है और क्या अधिनियम की धारा 6 के अधीन उसका राजपत्र में प्रकाशित किया जाना आवश्यक है। इस संबंध में यह बताना अनावश्यक है कि उस अन्वेषण की परिधि, जो अधिकरण या न्यायालय अंतरिम आदेश पारित करने के प्रक्रम पर करता है, अंतिम न्याय निर्णयन करने से पूर्व किए गए अन्वेषण की तुलना में सीमित है। अन्वेषण की प्रकृति और सीमा तथा अन्तरिम अनुतोष हेतु आवेदन को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए अपेक्षित समाधान की मात्रा प्रत्येक मामले की परिस्थितियों और विवाद की प्रकृति पर निर्भर करेगी। इस संबंध में कोई कठोर नियम अधिकथित नहीं किया जा सकता है। तथापि कोई भी अधिकरण या न्यायालय इस आधार पर अंतरिम आदेश पारित करने से निवारित या प्रतिषिद्ध नहीं है कि उसे उस प्रक्रम पर अंतिम विनिश्चय करने के लिए अपेक्षित सभी सामग्री उपलब्ध नहीं है। अधिकरण या न्यायालय की शक्ति में ऐसे निषेध को पढ़ने का अर्थ उसे अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने की शक्ति से वंचित करना है, जब ऐसे अनुतोष के लिए निर्देश किया गया है। अतः यह अभिनिर्धारित किया जाना होगा कि अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण केवल उस कारण निर्देश के अनुसरण में अंतिम आदेश या निदेश पारित करने अथवा अंतरिम अनुतोष अनुदत्त करने से निवारित नहीं है कि अंतरिम प्रक्रम पर उसने पूर्ण अन्वेषण नहीं किया है, जिसका अंतिम रिपोर्ट दिए जाने और अन्तिम विनिश्चय किए जाने से पूर्व किया जाना आवश्यक है। वह ऐसी सामग्री के आधार पर अंतरिम आदेश पारित कर सकता है, जो, उसके अनुसार, अंतरिम आदेश की प्रकृति के अनुरूप है।

97. अधिकरण द्वारा पारित अन्तरिम आदेश या अनुदत्त अनुतोष, जब वे पूर्णतः प्रक्रियात्मक प्रकृति के नहीं हैं और जब उनका पक्षकारों द्वारा, उन्हें प्रभावी बनाए जाने के उद्देश्य से, कार्यान्वयन आवश्यक हो जाता है, अधिनियम की धारा 5(2) और 6 के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय माने जाते हैं। अधिकरण के वर्तमान आदेश में उस सामग्री की चर्चा की गई है, जिसके आधार पर वह किया गया है, और उसमें कर्नाटक राज्य को अपने जलाशयों से जल छोड़ने के लिए निदेश दिया गया है, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि जून से मई तक के वर्ष में तमिलनाडु के मैत्तूर जलाशय में 205 टी० एम० सी० जल उपलब्ध रहता है। उसके द्वारा आदेश को तारीख 1 जुलाई, 1991 से प्रभावी बनाया गया है और उसमें मास प्रति मास जल छोड़े जाने के कार्य को विनियमित करने के लिए समय-सारणी भी अधिकथित की गई है। उसमें उक्त अवधि के दौरान जल-प्रदाय के समायोजन का भी उपबंध किया गया है। उसके द्वारा तमिलनाडु राज्य को पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र के कराइकल क्षेत्र के लिए 6 टी० एम० सी० जल परिदत्त करने का भी निदेश किया गया है। उसके अतिरिक्त, उसमें कर्नाटक राज्य को विद्यमान 11.2 लाख एकड़ से परे कावेरी नदी के जलों द्वारा सिंचाई के अधीन अपने क्षेत्र को न बढ़ाने का भी निदेश किया गया है। उसमें यह भी घोषित किया गया है कि वह विवाद का अंतिम न्यायनिर्णयन होने तक प्रभावी रहेगा। इस प्रकार उक्त आदेश न केवल घोषणात्मक आदेश के रूप में आशयित है बल्कि वह उसे पक्षकारों द्वारा क्रियान्वित किए जाने और प्रभावी बनाए जाने के लिए भी आशयित है। अतः प्रश्नगत आदेश धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और

विनिश्चय गठित करता है और उसका अधिनियम की धारा 6 के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित किया जाना आवश्यक है, जिससे कि उसे पक्षकारों के लिए आबद्धकर और प्रभावी बनाया जा सके।

98. इस दलील में कोई बल नहीं है कि अधिनियम की धारा 5(3) अंतरिम आदेशों को लागू नहीं हो सकती है क्योंकि केवल अंतिम विनिश्चय ही उसमें उपबंधित अधिकरण को द्वितीय निर्देश के अधीन विचार किए जाने के लिए अभिप्रेत है। जैसा कि ऊपर अभिनिर्धारित किया जा चुका है, यदि अधिकरण को अंतरिम विनिश्चय करने की शक्ति प्राप्त है, जब उसके लिए निर्देश किया जाता है, तो उक्त विनिश्चय को भी उक्त उपबंध लागू होंगे। केंद्रीय सरकार या कोई भी राज्य सरकार, ऐसे विनिश्चय पर भी विचार करने के पश्चात् अधिकरण से स्पष्टीकरण या मार्गदर्शन की अपेक्षा कर सकेगी, जैसा कि उक्त उपबंधों में कहा गया है, और ऐसा स्पष्टीकरण और मार्गदर्शन ऐसे विनिश्चय की तारीख से तीन मास के अन्दर मांगा जा सकता है। उसके पश्चात् अधिकरण विनिश्चय पर पुनः विचार कर सकेगा और उसे ऐसा स्पष्टीकरण या मार्गदर्शन देते हुए, अतिरिक्त रिपोर्ट केंद्रीय सरकार को अग्रेषित कर सकेगा, जैसा वह ठीक समझे। ऐसे मामलों में इस प्रकार पुनः विचार किए गए अंतरिम विनिश्चय को अधिनियम की धारा 6 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित किया जाना होता है और वह आबद्धकर तथा प्रभावी हो जाता है। अतः हम इस बात का कोई कारण नहीं देखते कि धारा 5(3) के उपबंध अधिकरण को अंतरिम आदेश पारित करने से क्यों निवारित करेंगे या उसे क्यों अक्षम बनाएंगे। जब एक बार धारा 5(2) के अधीन कोई विनिश्चय कर लिया जाता है, चाहे वह अन्तरिम हो या अंतिम, तो उसे उक्त धारा की उपधारा (3) के उपबंध और अधिनियम की धारा 6 के उपबंध भी लागू हो जाते हैं।

99. जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि (चूंकि) वर्तमान आदेश ऐसे विषय पर, जो निर्देश का भाग था, जैसा कि इस न्यायालय ने उक्त विनिश्चय में अभिनिर्धारित किया है, 1991 की सिविल अपील सं० 303-4 में इस न्यायालय के तारीख 26 अप्रैल, 1991 के विनिश्चय के अनुसरण में किया गया है, अतः वह धारा 5(2) के अधीन रिपोर्ट और विनिश्चय ही हो सकता है, कोई और चीज नहीं और उसे अधिनियम की धारा 6 के अधीन प्रकाशित किया जाना है, जिससे कि उसे प्रभावी और पक्षकारों के लिए आबद्धकर बनाया जा सके। उक्त आदेश की इस विधिक स्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है। अधिनियम के अधीन उसकी प्रभावकारिता को प्रश्नगत करने का अर्थ उसका उल्लंघन करना होगा।

100. निर्णय समाप्त करने से पूर्व, हम यह कहना भी चाहेंगे कि इस प्रश्न पर कि क्या संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन वर्तमान निर्देश जैसे राष्ट्रपति के निर्देश पर इस न्यायालय द्वारा दी गई राय सभी न्यायालयों के लिए आबद्धकर है, हमारे समक्ष काफी विस्तार से विचार किया गया। तथापि, हमारा यह मत है कि हमें उक्त प्रश्न पर अपनी राय अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि, प्रथमतः, उक्त प्रश्न निर्देश का भाग

नहीं है; और दूसरे, उस पर हमारे द्वारा व्यक्त की जाने वाली कोई भी राय प्रकृति में परामर्श मात्र होगी। अतः हम इस मामले को इसी प्रक्रम पर छोड़ रहे हैं। न्यायनिर्णयन के रूप में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि परामर्श के रूप में दी गई राय को महत्व और सम्मान दिया जाना चाहिए और सामान्यतः उसका अनुसरण किया जाता है। हम यह महसूस करते हैं कि उक्त मत का, जो इस समय प्रभावी है, और अधिक उचित समय आने तक, उपयोगी रूप में प्रभावी बना रहना उचित होगा।

101. अतः हमें निर्देशित प्रश्नों पर हमारी राय इस प्रकार है—

प्रश्न सं० 1—कर्नाटक के राज्यपाल द्वारा तारीख 25 जुलाई, 1991 को पारित कर्नाटक कावेरी द्रोणी सिंचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991 (अब अधिनियम) राज्य की विधायी सक्षमता से परे है और इसलिए वह संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति से बाह्य है।

प्रश्न सं० 2—(i) अधिकरण का तारीख 25 जून, 1991 का आदेश अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 5(2) के अर्थान्तर्गत रिपोर्ट और विनिश्चय गठित करता है।

(ii) अतः अधिनियम की धारा 6 के अधीन उक्त आदेश का केन्द्रीय सरकार द्वारा राजपत्र में प्रकाशित किया जाना आवश्यक है, जिससे कि उसे प्रभावी बनाया जा सके।

प्रश्न सं० 3—(i) अधिनियम के अधीन जल विवाद अधिकरण विवाद के पक्षकारों को कोई अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने के लिए सक्षम है, जब केंद्रीय सरकार द्वारा ऐसा निर्देश किया जाता है;

(ii) यह प्रश्न कि क्या अधिकरण को उस स्थिति में अन्तरिम अनुतोष अनुदत्त करने की शक्ति प्राप्त है, जब केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे अनुतोष के लिए कोई निर्देश नहीं किया गया है, ऐसा प्रश्न है जो वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उद्भूत नहीं होता है, जिनमें यह निर्देश किया गया है। अतः हम उसका उत्तर देना आवश्यक नहीं समझते।

निर्देश का उत्तर दिया गया।

न०